संक्षिप्तीकरण--कला

राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा प्री-युनिवर्सिटी एवं टी०डी०सी० प्रथम वर्ष कक्षाओं के लिए अनिवार्य हिन्दी में निर्धारित पाठ्य-पुस्तक

कहा जाता है कि मुंशी प्रेमचन्द फिल्मी दुनियां से निराश लौट गए। कुछ लोगों ने कहा कि वह फिल्मी दुनियां के वातावरण में अपने आपको समा न सके। कुछ ने कहा कि वह इस योग्य न थे कि फिल्मों में अपना स्थान बना सकते। लेकिन किसी ने यह नहीं कहा कि फिल्मी दुनियां ने उनकी योग्यता को न समझा, यहां के निर्माता-निर्देशकों ने उनका मूल्य न जाना। क्योंकि फिल्मी दुनियाँ का हर निर्माता और निर्देशक खुद को एक बड़ा कथाकार भी मानता है। फिल्मी कहानियों के बारे में कहा जाता है कि 'चट मंगनी पट ब्याह' की तरह लिखी जाती हैं, यानि लड़का लड़की की साईकिल से टकरा गया; पहले झगड़ा हुआ, बाद में प्यार हो गया। लो, हो गई कहानी तैयार। ऐसी दशा में मुँशीजी यहां रहकर क्या पाते। क्या वह ऐसी बेतुकी बातें अपनी कलम की नोंक से उतार सकते थे? कदापि नहीं। वह साहित्यकार थे।

—डॉ० जे० पी० शर्मा

मूल्य : १.२५

कालेज बुक डिपो, जयपुर

संक्षिप्तीकरण-कला

लेखक

डॉ० जे० पी० शर्मा

कालेज बुक डिपो

जयपुर

लेखकीय

संक्षिप्तीकरण वास्तव में एक कला है जिसे युग की आवश्यकताएँ वैज्ञानिक आधार प्रदान करने की चेष्टा कर रही हैं। आज प्रसार और विस्तार का युग है। फाइलों और भाषणों का महत्त्व भुलाया नहीं जा सकता। विशाल-काय ग्रन्थ मुद्रण-कलों की कृपा से रूपायित हो रहे हैं। इन सबके पढ़ने और देखने के लिए आज के व्यस्त मनुष्य के पास समय नहीं है, फिर भी इन कृतियों और वाणियों को उपेक्षित नहीं ठहराया जा सकता है। इसलिए इनके संक्षिप्त रूप आवश्यक होते हैं, किन्तु यह कार्य जितना सरल समझा जाता है उतना है नहीं। अनभ्यस्त व्यक्ति इस काम को नहीं कर सकता। इसके लिए अभ्यास चाहिए और अभ्यास की भूमिका में नियत सिद्धान्त चाहिये।

प्रस्तुत कृति इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए तैयार की गई है। इसमें विशद सिद्धान्तों के साथ स्पष्टीकरण के लिए कुछ उदाहरण दिये गये हैं और फिर चुने हुए अभ्यास दिये गये हैं जिनमें कुछ बड़े और कठिन हैं और कुछ अपेक्षाकृत छोटे तथा सरल हैं।

इस अन्तर को रखने की आवश्यकता इसलिए हुई है कि अभ्यास दो भिन्न स्तरों को व्यक्त करते हुए राजस्थान विश्वविद्यालय की प्री-यूनिवर्सिटी तथा फर्स्ट-ईअर टी. डी. सी. की अनिवार्य हिन्दी कक्षाओं के छात्रों के लिए उपयोगी हो सकें। यदि अवधान और श्रम के इस परिणाम से छात्रों का लाभ हो सकेगा तो वे अवश्य सार्थक होंगे।

अनुक्रमणिका

: २ :

संक्षिप्तीकरण की परिभाषा और उसका क्षेत्र

परिभाषा

किसी विस्तृत विवरण, व्याख्या, वक्तव्य, पत्र, लेख आदि के तथ्यों और निर्देशों के ऐसे संयोजन को संक्षेपण या संक्षिप्तीकरण कहते हैं जिसमें उपयोगी एवं अनिवार्य मूल तथ्यों का संकलन तथा अप्रासंगिक, असंबद्ध एवं पुनरावृत्त बातों का विसर्जन कर दिया जाता है। इस दृष्टि से संक्षिप्तीकरण एक पूर्ण रचना है।

संक्षिप्तीकरण एक ऐसी रचना है जिसको पढ लेने के बाद मूल भाव या विचार स्पष्ट हो जाता है और किसी विस्तार के जानने की कोई सामान्य आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। मूल रचना को एक तिहाई में समाहित कर लेने वाली यह रचना अनेक भावों या विचारों के एकत्रीकरण और सम्बद्धिकरण पर विशेष बल देती है। जिस प्रकार छलना अपने छानने की प्रक्रिया में राई, सरसों आदि आवश्यक कणों को निकालकर अच्छे मोटे अन्न को अवशिष्ट रहने देता है, उसी प्रकार संक्षिप्तीकरण विस्तारों का त्याग और मूल भाव या विचार का आकलन करता है। इसमें आवश्यक बातें छँट जाती हैं और मूल बातें रह जाती हैं।

क्षेत्र

संक्षिप्तीकरण का क्षेत्र बहुत व्यापक है। साहित्य या व्यावहारिक बातों के सभी रूपों में संक्षिप्तीकरण का उपयोग किया जा सकता है। आज-कल एक-एक हजार पृष्ठों के उपन्यासों और बड़ी-बड़ी आलोचनात्मक पुस्तकों तक का संक्षिप्तीकरण किया जा रहा है। यह वास्तविक संक्षिप्तीकरण है या नहीं, इस बात को यहाँ छोड़कर, इससे उसके क्षेत्र का अनुमान लगाया जा सकता है। दफ्तरों के नोट, पत्रों की सामग्री, विज्ञापन की भाषा, इन्टरव्यू, किसी विशेष विषय पर किये गये वार्तालाप या संवाद के अतिरिक्त संदेशों

आदि में भी संक्षिप्तीकरण बड़ा उपयोगी सिद्ध होता है। इसलिए हाईस्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक के छात्रों को इसकी क्रिया-प्रक्रिया और इसके व्यावहारिक स्वरूप से अवगत होना पड़ता है। शिक्षा-मण्डलों, विश्वविद्यालयों अथवा जन-सेवा-आयोग की परीक्षाओं में संक्षिप्तीकरण उपयोगी माना जाता है। इसलिए इन परीक्षाओं में इसको स्थान दिया गया है। जब दफ्तर का बाबू अपने व्यस्त अधिकारी के पास फाइल लेकर जाता है तो यह अनुमान करना अनर्गल नहीं है कि उसके कागजों में एक-दो संक्षिप्तीकरण से भी संबद्ध होंगे। इस प्रकार सैनिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रों में संक्षिप्तीकरण को मान्यता दी जाती है।

: २ :
संक्षेपण की आवश्यकता

आज के व्यस्त जीवन ने साहित्य के क्षेत्र में कहानी और एकांकी की जिस आवश्यकता को प्रस्तुत किया है उसकी आवश्यकता को संक्षिप्तीकरण लेकर आया है। जब कोई लम्बा पत्र हमारे सामने आ जाता है तो वह जब तक हमारी बहुत रुचि का न हो, हमारे ध्यान या मनोयोग का विषय नहीं बनता। ऐसे पत्र को या तो हम किसी अपने घर वाले को सौंप देते हैं, उससे यह जानने के लिए कि उसमें क्या लिखा है या कभी-कभी हम अपने व्यक्तिगत सहायक को उसको साररूप में प्रस्तुत करने के लिए कह देते हैं। यह इसलिए होता है कि आज व्यस्तता बहुत बढ़ी हुई है। जीवन की सरलता और स्वाभाविकता, जटिलता और कृत्रिमता में तथा कथित सभ्यता के गह्वरों में विलीन हो गई है। कृत्रिमावश्यकताएं, चाहे वे पारिवारिक हों या सामाजिक, बड़ी तेजी से बढ़ती जा रही हैं और अति सामान्यतर व्यक्तियों को जीवन के एक स्तर पर रहने के लिये जिन साधनों का उपयोग करना पड़ता है वे व्यस्तता से मुक्त नहीं हैं।

जीवन-निर्वाह के लिए आर्थिक क्षेत्रों में भी बड़ी जटिलता है। उस व्यक्ति की कल्पना कीजिए जो अपने घर से प्रातः ८ बजे से पहले ही अपने कारखाने या कार्यालय के लिए रवाना हो जाता है और फिर रात आठ बजे

तक लौटता है। ऐसे व्यस्त जीवन में बड़ी वार्ता, बड़े पत्र, बड़ी कहानियां, बड़े उपन्यास आदि किसी भी बड़ी बात को संक्षिप्त रूप में ही मनुष्य देखना या अवगत करना चाहता है। यही बात सैनिक अभियानों के समय सामने आती है। जहां सुबह से शाम तक मारधाड़ मची रहती है, जहां आक्रमण और सुरक्षा जटिल प्रश्न बने रहते हैं, वहाँ लम्बे-चौड़े भाषणों, पत्रों या संवादों को पढ़ने-सुनने का अवकाश नहीं रहता। इसलिए संक्षिप्तीकरण वहां भी एक आवश्यकता बन कर ही आता है। उन सरकारी और गैर सरकारी कार्यालयों में जहां अधिकारी को हस्ताक्षरों से ही फुर्सत नहीं मिलती, बहुत बड़े लेखों और पत्रों को पढने की फुर्सत कहां है ? इसलिए दफ्तरों में भी संक्षिप्तीकरण आवश्यक होता है। इसी प्रकार से अन्य क्षेत्रों में भी संक्षिप्तीकरण की आवश्यकता होती है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए तथा भावी जीवन में सामने आने वाले काम की सुकरता के लिए विद्यार्थियों को संक्षिप्तीकरण से अवगत होना आवश्यक समझा गया है।

: ३ :

संक्षिप्तीकरण : स्वरूप

आज विज्ञान का युग है। चारों ओर विज्ञान के चरणों का स्पन्दन दृष्टिगोचर हो रहा है। जीवन के कोने-कोने में विज्ञान की किरणें चमक रही हैं। अतः बड़े सहज रूप में पाठक के सामने यह प्रश्न आ सकता है—**संक्षिप्तीकरण क्या है ? विज्ञान है या कला ?** यह कहने की आवश्यकता नहीं कि विज्ञान का परिणाम नियत और कला का परिणाम अनियत होता है। विज्ञान के परिणाम की घोषणा पहले ही से की जा सकती है, किन्तु कला के परिणाम के सम्बन्ध में ऐसी कोई घोषणा नहीं की जा सकती। कला का लक्ष्य सौंदर्य की अभिव्यंजना है। कला पाठक या दर्शक को आकर्षण प्रदान करती है। विज्ञान इस लक्ष्य का अतिक्रमण करता है। जहाँ कला आकर्षण के अतिरिक्त प्रेरणा दे सकती है वहाँ विज्ञान का परिणाम सुखद और दुखद दोनों प्रकार का हो सकता है। विज्ञान मनोरंजन की सामग्री प्रस्तुत कर सकता है और भीषण घटनाओं को भी जन्म दे सकता है। यह हो सकता है कि किसी

व्यक्ति विशेष के मन को कला अधिक छूये और किसी के मन को कम। किन्तु विज्ञान का परिणाम जिस प्रकार एक मनुष्य को प्रभावित करता है उसी प्रकार दूसरे को भी। उदाहरण के लिए बिजली को ले सकते हैं। समान परिस्थितियों में बिजली जिस प्रकार एक मनुष्य के लिए घातक सिद्ध हो सकती है उसी प्रकार दूसरे के लिए भी, जबकि कला ऐसा नहीं कर पाती। कला का लक्ष्य मनोरंजन है या उपयोगिता। कला कला के लिए भी हो सकती है और जीवन के लिए भी, किन्तु विज्ञान जीवन में सदैव साधना बन कर ही रहे, ऐसी बात नहीं है। उसमें से बाधा एवं विनाश भी व्युत्पन्न हो सकते हैं।

संक्षिप्तीकरण निश्चित रूप से विज्ञान नहीं है, क्योंकि उसका परिणाम नियत नहीं है। उसके सम्बन्ध में पूर्व घोषणा नहीं की जा सकती। उसमें एक कलाकार की साधना भी निहित रहती है और ज्ञान की आवश्यकता भी। इसलिए संक्षिप्तीकरण कला और विद्या का एक सम्मिलित स्वरूप है। नपे-तुले शब्दों और नपे-तुले वाक्यों में किसी बात को प्रस्तुत करना यदि एक कला नहीं है तो क्या है। यदि संक्षिप्तीकरण विज्ञान होता तो अनेक लोगों के प्रयत्न एक ही होते, किन्तु ५० व्यक्तियों की संक्षिप्तीकृत रचनाएं ५० प्रकार की हो सकती हैं और पचासों ही एक ही भाव या विवाद को प्रस्तुत करती हुई रचना सौंदर्य के ५० स्तरों को प्रकट कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त संक्षिप्तीकरण प्रक्रिया में शब्द-चयन और उनमें अर्थ-द्योतन की क्षमता बड़ी आवश्यक है। इसके लिए कि कौनसा शब्द कहां रख कर वाक्य के अर्थ को अधिक कान्त बना सकेगा, ज्ञान की आवश्यकता है। इसलिए संक्षिप्तीकरण कला और विद्या का एक समञ्जस्स रूप है। यह कहना बहुत कठिन है कि इस कला में कितनी विद्या चाहिए अथवा इस विद्या में कितनी कला की आवश्यकता है। जो हो, इस विवेचन का निष्कर्ष यही है कि संक्षिप्तीकरण विज्ञान नहीं कला है, जिसको विद्या का समुचित सहयोग प्राप्त होता है।

किसका संक्षिप्तीकरण ?

परीक्षा में अथवा व्यावहारिक रूप में व्यक्ति के सामने यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि संक्षिप्तीकरण किसका किया जाता है—भाव या विचार का अथवा भाषा का ? यहां यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि मूल-भाव या विचार का संक्षिप्तीकरण कभी नहीं हो सकता। मूल भाव एक ऐसा बीज है

जिसमें पूर्ण वृक्ष निहित रहता है, किन्तु व्यक्त रूप में नहीं, अव्यक्त रूप में। जिस प्रकार बीज की काट-छाँट नहीं की जा सकती उसी प्रकार मूलभाव का संक्षिप्तीकरण नहीं हो सकता (मूलभाव का संक्षिप्तीकरण भाव को आहत या विकृत किये बिना नहीं रह सकता)। हाँ, जिस प्रकार माली जंगली घास को काट-छाँट कर घास के मैदान को सुडौल, सुन्दर एवं उपयोगी बना देता है उसी प्रकार संक्षिप्तीकरण-कर्ता विस्तारों को काट-छांट कर मूलभाव के साथ इस प्रकार से व्यवस्थित कर देता है कि उसके इस कर्म से मूलभाव न तो विकृत हो पाता है और न ध्वस्त ही। वरन् लेखक, जो भाव ग्रहणीय है, उसी को ग्रहण कर लेता है तभी वह संक्षिप्तीकरण के लक्ष्य को सिद्ध करता है। इसलिए संक्षिप्तीकरण मूलभाव का नहीं होता। इससे स्पष्ट है कि भाषा का संक्षिप्तीकरण होता है। यहाँ यह शंका हो सकती है कि क्या भाषा भाव या विचारहीन हो सकती है और यदि नहीं तो क्या भाषा के संक्षिप्तीकरण में भाव का संक्षिप्तीकरण नहीं हो पाता? इसका एकमात्र उत्तर यह है कि मूल-भाव एक होता है अनेक नहीं होते। वह एक दो वाक्यों में ही छिपा रहता है। जिस प्रकार वर्षा-ऋतु में अनेक टहनियों से लता फैल जाती है उसी प्रकार अपने अनेक विस्तारों से मूलभाव फैल जाता है। और जिस प्रकार उन टह-नियों को काटने से लता का असली रूप विकृत या नष्ट नहीं होता उसी प्रकार विस्तारों के विसर्जन से मूलभाव प्रतिहत अथवा ध्वस्त नहीं होता। अतएव भाषा के संक्षिप्तीकरण के साथ केवल अनावश्यक विस्तारों का ही विसर्जन कर दिया जाता है फिर यह कैसे कह दिया जाय कि संक्षिप्तीकरण भाव का होता है।

कभी-कभी दो-दो तीन-तीन अनुच्छेद परीक्षा में संक्षिप्तीकरण के लिए आ जाते हैं और प्रत्येक अनुच्छेद में पृथक्-पृथक् भाव निहित हो सकते हैं। संक्षेपण कर्ता के सामने यह समस्या नहीं होनी चाहिए कि वह तीन अनुच्छेदों के भिन्न-भिन्न भावों को किस प्रकार से प्रस्तुत करे। यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि मूलभाव एक होने पर शेष भाव गौण रह जाते हैं। यदि यह प्रश्न आता है कि इन भावों में से किसका विसर्जन किया जाय तो उत्तर यही होना चाहिए कि गौणभावों का। फिर भी यदि संक्षेपक को मूलभाव के साथ संबद्ध अन्यभाव भी आवश्यक एवं उपयोगी प्रतीत होते हैं तो वह उनको सुरक्षित

रख सकता है; किन्तु अनुच्छेदों को सुरक्षित रखने की अनिवार्यता स्वीकार नहीं की जा सकती। अनुच्छेद अपने लिए नहीं है, वे अपने-अपने भाव के लिए हैं। यदि मूलभाव की सक्रमता में गौणभावों को भी एक ही अनुच्छेद में जड़ दिया जाय तो न तो मूलभाव पर कोई प्रभाव पड़ता है और न संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया पर ही, केवल अभिव्यक्ति में अन्तर और शब्द–संख्या में न्यूनता आ सकती है।

इस विवेचन से पाठक को इसी निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि संक्षिप्तीकरण मूलभाव का नहीं होता। विसर्जनीय भाव या विचार विसर्जित होकर भी मूलभाव को आघात नहीं पहुँचाते और यदि संक्षेपक की रुचि में गौण भावों की रक्षा मूलभाव के पुष्टिकरण के लिए आवश्यक प्रतीत होती है तो वह ऐसा कर सकता है, किन्तु वह संक्षिप्तीकरण के कलेवर सम्बन्धित नियम का उल्लंघन नहीं कर सकता।

: ४ :

संक्षिप्तीकरण के प्रकार

मूल और संक्षिप्तीकरण

विशेषज्ञों की यह मान्यता है कि किसी विशेष निर्देष के अभाव में संक्षिप्तीकरण का कलेवर मूल के एक तिहाई से अधिक बना नहीं होना चाहिए। वैसे एक तिहाई के नियम का प्रतिपादन अनिवार्य नहीं है, किन्तु इस नियम को सामान्य मान्यता मिल गई है। इसलिए इसके उल्लंघन को अच्छा नहीं माना जाता है। यहां यह भी प्रश्न आता है कि क्या संक्षिप्तीकरण की भाषा और मूल की भाषा एक हो सकती है? जहां तक कलेवर का प्रश्न है यह तो साफ पहले ही कर दिया गया है कि संक्षिप्तीकरण की शब्दावली में क्या कोई सम्बन्ध बना रह सकता है। मैं समझता हूँ कि मूल के शब्द हेय नहीं समझे जाने चाहिए। किसी शब्द को रखकर भी उससे कोई दूसरा काम लिया जा सकता है और व्याकरण की दृष्टि से किसी शब्द को भिन्न स्थान देकर भी उसे उसी अर्थ की व्यंजना कराई जा सकती है, किन्तु मूल की भाषा को संक्षिप्तीकरण में ज्यों का त्यों सुरक्षित रखने का न तो कोई अभिप्राय होता है और न

रखना ही चाहिए। यह भी बताया जा चुका है कि कतर-छांट भाषा में की जाती है। अतएव परिवर्तन की सहानुभूति भाषा में ही की जा सकती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि संक्षिप्तीकरण एक परिवर्तन है। उसमें संक्षेपक बड़ी स्वतन्त्रता से किन्तु भाव का वाहन बनाकर अपनी भाषा का प्रयोग कर सकता है। हां, यदि संक्षेपक की भाषा भाव को कोई दूसरा रूप देती है अथवा उसे किसी भिन्न दिशा में ले जाती है तो संक्षिप्तीकरण का अभिप्राय बाधित होता है और उसको अपनी भाषा पर नियंत्रण लगाना चाहिए।

इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि संक्षेपक मूल के किसी वाक्य या पद का प्रयोग किसी भी अवस्था में नहीं कर सकता। वह अवश्य कर सकता है, किन्तु इससे अधिक लोभ नियम का बाधक सिद्ध हो सकता है और उस दशा में संक्षिप्तीकरण पर यह आरोप लगाया जा सकता है कि उसमें मूल के वाक्यों को ही उठाकर रख दिया गया है। इस आरोप को अवसर नहीं मिलना चाहिए क्योंकि यह अधिक अच्छा नहीं है। अच्छा यही है कि मूल के भावों को सुर-क्षित रखते हुए संक्षेपक के अपने शब्दों में, मूल के एक तिहाई में संक्षिप्तीकरण सम्पन्न किया जाय। बहुत आवश्यक होने पर मूल के कुछ शब्दों का प्रयोग करने में भी कोई हिचक नहीं होनी चाहिए।

अन्वय और संक्षिप्तीकरण

कभी-कभी छात्र का मन परीक्षा में इस भ्रम से पीड़ित हो सकता है कि मूल के शब्दों का अर्थ बदलकर रखने से संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया पूरी हो जाती है। ऐसा कभी नहीं हो सकता। अन्वय या शब्दार्थ संक्षिप्तीकरण के किसी नियम या आशय का अनुपालन नहीं करता। शब्दों का अर्थ बदलने से न तो भाषा का कलेवर पर ही कोई प्रभाव पड़ता है और न विस्तारों पर ही। जहां कलेवर भी वही हो और विस्तार भी वही, वहां संक्षिप्तीकरण का बहाना ढोंग मात्र है। अन्वय में मूल के मुख्य एवं गौण भावों का समावेश होता है और विस्तार भी वही होते हैं, जबकि संक्षिप्तीकरण में केवल मूलभाव रहता है। संक्षेपक का मूल की भाषा से अधिकांशतः इतना ही सम्बन्ध रहता है कि उससे संक्षेपक भाव या विचार लेता है और मूल की भाषा से ही उसे मूल और गौण भावों का परिचय मिलता है। दोनों के सम्बन्धों की अवगति भी

मूल की भाषा से ही होती है। इससे अधिक सम्बन्ध–लिप्सा संक्षेपक के दोषों को ही अवगत कराती है।

सारांश और संक्षिप्तीकरण

संक्षिप्तीकरण और सारांश में बहुत अंतर है। सारांश कितना ही छोटा हो सकता है और मूल के एक तिहाई से बड़ा भी हो सकता है। सारांश लेखक के अपने शब्दों में भी हो सकता है और मूल की शब्दावली में भी हो सकता है। कुछ लेखकों की मान्यता है कि संक्षिप्तीकरण और सारांश का अनुपात ३:१ का होना चाहिए। यह केवल मान्यता है न तो सिद्धि है और न प्रसिद्धि ही। सारांश की भाषा के लिए भी यह आवश्यक नहीं है कि मूल से उसका इतना सम्बन्ध हो या न हो।

आशय और संक्षिप्तीकरण

आशय में सम्पूर्ण कथन का अथवा गूढ़ पदों या वाक्यों का स्पष्टीकरण रहता है, किन्तु संक्षिप्तीकरण में स्पष्टीकरण के लिए कोई अवकाश नहीं होता।

भावार्थ और संक्षिप्तीकरण

दोनों के भावों अथवा विचारों की संक्षिप्तता रहती है, किन्तु जहां भावार्थ में लेखन की लम्बाई चौड़ाई की अन्तिम सीमा नियत नहीं की जा सकती वहां संक्षिप्तीकरण के लिए यह आवश्यक माना गया है कि वह सामान्यतया मूल का एक तिहाई हो। इसके अतिरिक्त भावार्थ में मूल और गौण दोनों भावों का स्थान सुरक्षित रहता है किन्तु संक्षिप्तीकरण में प्रायः मूलभाव ही सुरक्षित रहता है।

इन भेदों से यह स्पष्ट हो जाता है कि संक्षिप्तीकरण एक स्वतंत्र रचना–विधि है जिसका उद्देश्य एक तो यह होता है कि उसमें मूल अवतरण (Passage) की सभी आवश्यक बातें संक्षिप्त रूप में उपस्थित हो सकें और दूसरा यह होता है कि मूल की आवश्यक बातों को प्रस्तुत करने के लिए ऐसी व्यवस्था की जाय कि पढ़ने में सरलता, स्पष्टता, मौलिकता और एकता का बोध हो।

परिक्षेपण और संक्षिप्तीकरण

(१) संक्षिप्तीकरण में मूलभाव को सुरक्षित रखने की चेष्टा को प्रमुखता दी जाती है,

(२) गौण विस्तारों का परित्याग कर दिया जाता है,

(३) मूल के दो तिहाई को इस प्रकार निकाल दिया जाता है कि मूल भाव आहत नहीं हो पाता। इसके विपरीत परिक्षेपण में मूलभाव की व्याख्या के साथ–साथ उसके स्पष्टीकरण के लिए विस्तारों की योजना की जाती है और संक्षिप्त भाव उसी प्रकार से विस्तीर्ण बना दिया जाता है जैसे रबड़ का ट्यूब फुलाकर बड़ा कर दिया जाता है। इस प्रक्रिया में मूलभाव के गुण–दोष विस्तारों के साथ सामने आ जाते हैं। उसमें एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण का योग हो जाता है।

: ५ :

संक्षिप्तीकरण के भेद

यों तो संक्षिप्तीकरण के अनेक भेद हो सकते हैं, किन्तु कुछ प्रमुख भेद विशेष उल्लेखनीय हैं, वे ये हैं :—

१. वार्तालाप, संवाद या प्रश्नोत्तर संक्षिप्तीकरण,
२. भाषण या लेख संक्षिप्तीकरण,
३. गल्प या उपन्यास संक्षिप्तीकरण,
४. दृश्य-वर्णन या फीचर संक्षिप्तीकरण,
५. संदेश, निर्देश या आदेश संक्षिप्तीकरण,
६. विज्ञापन, समाचार या सूचना संक्षिप्तीकरण,
७. पत्र संक्षिप्तीकरण,
८. तार संक्षिप्तीकरण,
९. कार्यालयों के नोट या टिप्पणियों का संक्षिप्तीकरण।

१. वार्तालाप, संवाद या प्रश्नोत्तर संक्षिप्तीकरण

भावाभिव्यक्ति की ये तीनों प्रणालियाँ लगभग एक सी हैं। इन प्रणा-

लियों में या तो किसी एक व्यक्ति, वस्तु या स्थान के संबंध में अनेक मत या अनेक व्यक्तियों, वस्तुओं या स्थानों के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न मत संकलित होते हैं। इनमें कम-से-कम दो व्यक्तियों या पात्रों का प्रयोग होता है। उदाहरण:—

(क) वार्तालाप शैली—

"मैं इस स्वार्थी जगत को भलिभांति जानता हूँ," मोहन ने आवेश में कहा। "और मैं भी इस जगत के बगुलाभक्तों को अच्छी तरह जानता हूँ", राम ने उत्तर दिया। बहुत देर तक इसी प्रकार के तर्क-वितर्क होते रहे। अन्त में राम बोला—"मोहन, मैं तुम्हारी नस-नस से परिचित हूँ, तुम मुझे धोखा नहीं दे सकते।" यह सुनकर मोहन की मुद्रा कुछ अधिक गम्भीर हो गई और वह राम की ओर घूर-घूर कर देखता हुआ और यह कहता हुआ चला गया—"देखे जाओगे बच्चू।"

(ख) संवाद शैली:—

मोहन:—कोयला किसी काम का नहीं है, राम !

राम:—यह आपकी समझ का फेर है। इस विज्ञान के युग में भी तुम ऐसा कहते हो यह बड़ी सोचनीय बात है।

मोहन:—मैं सही कहता हूँ। आज कोयले के स्थान पर और भी ऐसी बहुत सी चीजें हैं जिनका उपयोग सरल, अल्पव्यय और अहानिप्रद है।

राम:—किन्तु कोयले की भी अपनी उपयोगिता है। उसने हमारे विकास में अब तक जो योग दिया है उसका विस्मरण एक बड़ी भारी कृतघ्नता होगी।

(ग) प्रश्नोत्तर:—

दिनेश:—क्या आप बड़ी कहानी और छोटे उपन्यास में कोई भेद नहीं मानते हैं ?

रमेश:—हाँ, मानता हूँ किन्तु इतना नहीं जितना आप मानते हैं।

दिनेश:—मैं आपके तर्कों को नहीं समझ सका।

रमेश:—अजी मेरा सीधा तर्क यह है कि उपन्यास में अनेक घटनाओं का समाहार आवश्यक है, जबकि कहानी में अनेक घटना क्या, एक घटना

भी अनिवार्य नहीं है। कभी-कभी कोई भाव या संवेदना ही, अपने कुशलतापूर्ण प्रतिरूपण के माध्यम से उद्देश्य की सफलता सिद्ध कर लेती है।

दिनेश:—हाँ, तब तो मेरे और आपके दृष्टिकोण में बहुत भेद है।

२. भाषण या लेख संक्षिप्तीकरण

भाषण और लेख में प्राय: एक ही प्रणाली का अनुसरण होता है। हाँ, दोनों के प्रारंभ और अन्त में कुछ भेद रह सकता है। इसके अतिरिक्त एक भेद यह भी होता है कि भाषण में वैयक्तिकता के समावेश की अधिक संभावना रहती है, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि लेख में वैयक्तिकता के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं है। भाषण का प्रारंभ श्रोताओं के प्रति संबोधन के साथ होता है और अन्त में भी भाषणकर्ता श्रोताओं का स्मरण किये बिना नहीं रहता। यद्यपि श्रोताओं की स्मरणीयता अनिवार्यता नहीं है फिर भी शिष्टाचार की मांग के कारण उसकी आवश्यकता अवश्य होती है। भाषणकर्ता अपने भाषण का विषय भी घोषित कर देता है किन्तु संबोधन के पश्चात्। लेख में यह प्रतिबंध नहीं होता। यह बहुत संभव है कि लेख वैयक्तिकता के किसी संकेत के बिना भी समाप्त हो जाय। लेख में शीर्षक का प्रमुख स्थान है। अन्यथा पाठक की समझ को बड़ी दुरूहता का सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त निबन्ध में रचना-कला का आश्रय आवश्यक है जबकि भाषण-कला भाषण कर्ता के व्यक्तित्व के अतिरिक्त उसकी भाषण शैली, ध्वनि-प्रसार आदि से भी संबंधित होती है। लेख की भूमिका और अन्त का विशेष महत्त्व है। ये दोनों मिलकर इतने समर्थ होने चाहिए कि समग्र-लेख का सार इन दोनों को पढ़कर ही प्राप्त हो जाये। भाषण और लेख में तर्क प्रणाली भी बड़ी आवश्यक है। तर्कों के बिना इनमें प्रभाविष्णुता नहीं आती।

(१) **भाषण**—उदाहरण:—

उपस्थित बहनों और भाइयो !

बड़ा हर्ष है कि आपने मुझे इस महाविद्यालय के साहित्य-परिषद के वार्षिक उद्घाटन के अवसर पर बुलाकर गौरवान्वित किया है। मैं अधिक गौरव का अनुभव इस बारे से कर रहा हूँ कि अधिकारी लोग आज भी राज-

नीतिज्ञ से अधिक विद्वान का आदर करते हैं। × × ×

× × × अन्त में आपने मुझे यहाँ बुलाकर जो सम्मान दिया है मैं उसे पुनः याद किये बिना नहीं रह सकता। मैं इसके लिए आप लोगों के प्रति बहुत आभार व्यक्त करता हूँ और आप लोगों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

(२) लेखः—उदाहरणः—**'अनुशासन'**

अनुशासन की जितनी मांग और पुकार आज हो रही है संभवतः उतनी पहले कभी नहीं थी। अनुशासन के ढीले होने से देश में चारों ओर कुहराम मचा हुआ है। स्थान-स्थान से यही शिकायत आती है कि अमुक सभा में हुल्लड़ मचाया गया, अमुक सम्मेलन में कुल्हड़ों की वर्षा हुई, अमुक राज्य सभा या विधान सभा में गाली-गलौज और हंगामा हुआ। इन सबसे अधिक शिकायत विद्यार्थियों के संबंध में आती है। अन्य लोगों की अनुशासनहीनता को इतना नहीं कोसा जाता जितना विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता को कोसा जाता है। ऐसा क्यों हो रहा है। यह बात किसी हद तक ठीक भी है कि समाज के भावी निर्माण में भारतीय छात्र का बहुत बड़ा योग होगा। और यह योग तब तक सम्भव नहीं जब तक उसकी साधना पूर्ण न हो जाये। विद्यार्थी-जीवन स्वयं एक साधना है और उसमें अनुशासन का बहुत बड़ा हाथ है। × × × ×

चाहे देश में, चाहे विदेश में, चाहे स्कूलों में हों चाहे कॉलेजों में, चाहे घर पर हों या मार्ग में, चाहे मित्रों में हों और चाहे सभाओं में, विद्यार्थियों को अपने उत्तरदायित्व का स्मरण रखना है। वे भावी जीवन संग्राम के ऐसे सैनिक हैं, जो प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। स्कूल और कॉलेज उनके प्रशिक्षण-शिविर हैं। उनको यह ध्यान रखना है कि यहां वे सिपाही होकर सीख रहे हैं और भावी जीवन में हाकिम होकर उन्हें इसी प्रशिक्षण की देखभाल करनी है। जो कुछ भी कर रहे हैं उस सबका मुआविजा कल उन्हीं को देना पड़ेगा। इसलिये वे सतर्क रहें और अपने अनुशासन की शुभ्र चादर पर किसी आरोप का कलंक न लगने दें।

३. गल्प या उपन्यास

गल्प और उपन्यास थोड़े से अन्तर के साथ गद्य कथा-साहित्य की दो

भिन्न विधाएँ हैं। इनकी भिन्नता थोड़ी-सी तक़नीकी और थोड़ी सी रूप की होती है। यद्यपि संक्षिप्त कहानियों का संक्षिप्त रूप अभी तक सामने नहीं आया है किन्तु उसकी आने की संभावना की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इधर कई वर्षों से उपन्यासों के संक्षिप्त संस्करण निकलते चले जा रहे हैं और बाजारों में उनकी धड़ाधड़ बिक्री हो रही है। इसलिए उपन्यासों के संक्षिप्तीकरण की आवश्यकता स्मरणीय है। सामान्यतया उपन्यास को एक कथा मानकर उसकी कथावस्तु को प्रस्तुत कर देने से उसके संक्षिप्तीकरण का आशय पूरा नहीं होता है। जहां ५००–५०० और ७००–७०० पृष्ठ के उपन्यास सौ सवा सौ या डेढ सौ पृष्ठों में निकल रहे हैं वहां कौनसी ऐसी चीज हो सकती है जिसको निकाला जा सकता है। वह है उसके वर्णन। वे वर्णन जो संक्षेपण में अनिवार्य नहीं हैं बिल्कुल निकाले जा सकते हैं। किन्तु जो वातावरण और परिस्थितियों के परिदर्शन में सहायक होते हैं उनके महत्त्वपूर्ण अंश सुरक्षित रखे जा सकते हैं। साथ ही उपन्यास के संक्षिप्तीकरण में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि चरित्र-चित्रण पर कोई आँच न आने पाये। यदि उपन्यास के संक्षिप्तीकरण की कोई आवश्यकता है तो उसमें चरित्र-चित्रण के संक्षिप्तीकरण की आवश्यकता को ही प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

गल्प और उपन्यास के उदाहरण देने की न तो आवश्यकता है और न यहाँ उनके लिए उपयुक्त स्थान ही है। इसलिए इस समय उनको यहां छोड़ा जाता है।

४. दृश्य वर्णन या फीचर

दृश्य वर्णन और फीचर दोनों गद्य विधाएं कुछ दूर खड़ी हुई हैं फिर भी उनमें बहुत कुछ समता देखी जा सकती है। दोनों का सम्बन्ध किसी समय या स्थान से सम्बद्ध है। दृश्य-वर्णन में लेखक अपने अनुभवों को प्रस्तुत करता है और फीचर में लेखक अपने अनुभवों को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि मानो पाठक दर्शक बनकर उसके निकट से ही अनुभव प्राप्त कर रहे हों। अर्थात् लेखक द्वारा स्थान या दृश्य पाठकों के सामने इस प्रकार से प्रस्तुत किए जाते हैं कि लेखक पाठक को एक अपना साथी–दर्शक बना लेता है। उदाहरण—

१. दृश्य-वर्णन—

‘नंगे रूखे पर्वत इस समय हरे–भरे हो गये थे। हमारा ध्यान आधि–

त्यका से शिखर तक और एक शिखर से दूसरे शिखर तक इस प्रकार दौड़ रहा था जैसे क्रीड़ा–मृग उद्यान में केलि करता हुआ इधर उधर दौडता है। स्थान–स्थान पर निर्झर झर रहे थे। शीतल पवन हल्की हल्की बौछार लेकर हमारे शरीर को सिहरन दे रहा था। नाचते हुए मोर और गाती हुई कोयलें हमारे मन को मुग्ध कर रहीं थीं।

२. फीचर—

'अब देखिए यह पुष्कर तीर्थ। आपको ये जो भव्य अट्टालिकाएँ, रेत के टीलों से घिरी हुई अजमेर की पर्वतमाला के उस पार दिखाई पड़ रही हैं, वे पुष्कर क्षेत्र की हैं। यह मन्दिरों का क्षेत्र है। आपको श्वेत, रक्तिम अथवा भगवां वस्त्र उड़ते हुए दिखाई दे रहे हैं। सामने देखिए बिल्कुल सामने। ये मन्दिरों की ध्वजाएं हैं। और वह बांईं ओर को पहाड़ी पर शुभ्र–वर्ण का जो मन्दिर दिखाई पड़ रहा है वह सावित्री का मन्दिर है। हां, तो चलिए इन भवनों और अट्टालिकाओं से आगे बढ़ें। देखिए अब आपको सीढ़ियों से घिरा हुआ यह विशाल जलाशय दिखाई दे रहा है। वही तो पुष्कर है। आज यह जल से भरा हुआ है किन्तु गीष्म में जल कम हो जाता है।

देखिए इसकी सीढ़ियां कितनी सुन्दर हैं। ये अनेक श्रद्धालुओं द्वारा बनाई गई हैं। इन पर निर्माण कर्ता और निर्माण काल लिखे हुए हैं।······

५. संदेश, निर्देश या आदेश

निर्देश और आदेश का स्वरूप लगभग एक-सा होता है। ये दोनों किसी अधिकारी की ओर से जाते हैं, किन्तु निर्देश किसी विशेषज्ञ की ओर से भी हो सकता है, निर्देश सदैव अनिवार्य नहीं होता। उसमें कभी कभी विचारणीयता सन्निहित रहती है। किन्तु आदेश अनिवार्य होता है। उसमें करणीयता के साथ अनिवार्यता भी होती है। ये दोनों संदेश के विशेष रूप हैं। संदेश में अधिकाँशत: वैयक्तिकता का सन्निवेश होता है। उसमें प्राय: आत्मदशा का वर्णन होता है किन्तु आत्मदशा का वर्णन सदैव अनिवार्य नहीं है। संदेश में सूचना का सन्निवेश भी हो सकता है। सैनिक संदेश प्राय: सूचनापरक होते हैं। राजनीतिक संदेश भी इसी प्रकार के होते हैं, किन्तु भारत का संदेश-काव्य अपनी वैयक्तिकता के लिए प्रसिद्ध है। उसमें विरह का प्राधान्य रहा है। हिन्दी गद्य में इस प्रकार के

संदेश का अभाव है। संक्षितीकरण के क्षेत्र में अधिकाँशतः सूचना—परक संदेश को ही स्वीकार किया गया है। उदाहरण—

१. संदेश—

'प्रयाग में अंग्रेजों की स्थिति अच्छी नहीं है। उनके गुप्तचर हमारे ही आदमी हैं। इसलिए उन्हें हमारे गुप्त कार्यों का सही अनुमान नहीं हो पा रहा है। सूचना और गमनागमन के साधन ध्वस्त कर दिए गए हैं। तार के खम्बे धराशायी हो रहे हैं। तार अपनी संख्या से अंग्रेजी शासन के दिन गिना रहे हैं। कल सायंकाल मेलवान जला दिया गया। दो गोरे रक्षक तार के लट्ठों के साथ बंधे पड़े हैं। ५० हजार रुपए के नोटों की होली जला दी गई है। आज प्रातःकाल हमारे संदेशवाहक कानपुर और लखनऊ खबर लेने देने गए हैं। आप लोग बनारस के पावन नाम की रक्षा कीजिए। अंग्रेजों के शासन की नाक में दम भरने के लिए आप समान उपायों को अपनाइए।"

२. निर्देश—

"वर्षा के अतिरेक के कारण सड़कें जगह-जगह टूट-फूट गयी हैं। ट्रकें और बसें सदा की भांति सहज रूप से दौड़ रही हैं। अभी-अभी एक कार और एक ट्रक दुर्घटना हो चुकी है। भय है कि कहीं और न हो जायें। सड़क दूदू और किशनगढ़ के बीच में अधिक खराब है। इसलिए दोनों स्थानों पर ड्राइवरों को सावधान करने के लिए शीघ्र ही सूचना-पट्ट लगा देने की आवश्यकता है।"

३. आदेश—

"रेलगाड़ी के आने जाने के समय से १० मिनट पहले ही, फाटक बंद कर दिये जायें। यदि पश्चिमी रेलवे का कोई फाटक इस समय खुला मिला तो द्वार रक्षक को दण्ड दिया जायेगा और यदि कोई व्यक्ति बल-पूर्वक फाटक खोलने-खुलवाने का प्रयत्न करेगा तो वह भी भारतीय दंडविधान की धारा × × × के अनुसार दण्ड का भागी होगा।"

६. विज्ञापन, समाचार या सूचना (Report) संक्षिप्तीकरण

इन तीनों विधाओं में भी थोड़ा-थोड़ा अन्तर है। विज्ञापन विज्ञापक की किसी आकांक्षा को व्यक्त करता है। वह सूचना का एक विशेष प्रकार

है। सूचना किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए दी जाती है। समाचार में ऐसी किसी आवश्यकता की पूर्ति की भावना सँनिहित ही हो, यह अनिवार्य नहीं है, किन्तु विज्ञापन में आवश्यकता की पूर्ति की भावना के साथ विज्ञापक विज्ञापितों से किसी उत्तर की प्रतीक्षा करता है। विज्ञापन में विज्ञापित अनेक होते हैं। समाचार में भी विज्ञापित अनेक हो सकते हैं, किन्तु सूचना में अनेकता अनिवार्य नहीं है। सूचित व्यक्ति एक भी हो सकता है और अनेक भी हो सकते हैं। इन तीनों विधाओं में आपसी सम्बन्ध होता है और इनके माध्यम से किसी वस्तु, व्यापार, घटना, स्थिति-परिस्थिति, व्यक्ति या स्थान के सम्बन्ध में विशेष अव-गति कराई जाती है। समाचार और विज्ञापन समाचार-पत्रों में प्रकाशित होकर ही अपना नाम सार्थक करते हैं, किन्तु सूचना किसी अन्य माध्यम से भी दी या पहुँचाई जा सकती है। जब ये दी जाती है तब यह अपने नाम को सार्थक करती है और जब किसी पत्र या व्यक्ति के माध्यम से पहुँचाई जाती है तब उसका स्वरूप 'संदेश' का हो जाता है। उदाहरण—

१. विज्ञापन—

"विनार निटेड 'टेरेलीन' शर्टिंग आपके बदन को हवा पहुंचाती है। हर कोई जानता है कि 'टेरेलीन' कैसा आश्चर्यजनक कपड़ा है—बहुत टिकाऊ, सिलवटों से बचने वाला, डुबाने पर तुरन्त सूखने वाला, इस्त्री की भी जरूरत नहीं। विनार 'टेरेलीन' शर्टिंग में ये सारे गुण हैं। साथ ही यह जाड़े में गर्म और गर्मी में शीतल रहती है। लाखों छोटे–छोटे छेद हवा को अन्दर जाने देते हैं, आपके शरीर को ताजा रहने देते हैं। ऐसा 'टेरिलीन' जिससे आपके बदन को हवा पहुंचती है। है न यह अकलमन्दी की बात कि आप इसकी एक कमीज बनायें। लीजिए, अभी नाप दीजिए।

'टेरिलीन'
विनार लिमिटेड
२-ए, थियेटर रोड,
कलकत्ता—१६।

२. समाचार—

वाजपेयी द्वारा हिन्दी-भवन के प्राचीन भाग का निरीक्षण

(हमारे संवाददाता द्वारा)

मेरठ, ३ जून ६५ ।

सागर विश्वविद्यालय पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष पं० कृष्णदत्त वाजपेयी हिन्दी भवन के मंत्री विश्वम्भरसहाय 'प्रेमी' के निमंत्रण पर हिन्दी भवन के उस भाग का निरीक्षण करने आए जो मुगलकालीन समझा जाता है ।

श्री वाजपेयी ने कुछ हिस्सों को अपने सामने साफ करवाया । इस पुराने भाग के कमरों और तिदरियों की छत एक है जिसमें नौ स्थानों में मिट्टी के नल फंसे हैं जो १४ फीट नीचे वायु पहुंचाते हैं ।

श्री वाजपेयी के अनुसार इस भाग की बनावट व भट्टी तथा लोहे की कढ़ाई यह प्रकट करती है कि यहां मुगलकाल में टकसाल थी । उन्होंने पत्रकार सम्मेलन में भी अपने विचार प्रकट किये और जहांगीर से शाहआलम के समय तक के वे सिक्के भी दिखलाए जिन्हें वे एक संग्रहकर्ता से लाये थे ।

उनका कहना है कि भवन के इस भाग को संग्रहालय का रूप दे देना चाहिए ।

३. सूचना—

"सर्व सज्जनों को सूचित किया जाता है कि आदर्श प्रशिक्षण एवं केन्द्र, बख्शी का तालाब, लखनऊ अपने केन्द्र द्वारा उत्पादित चमड़े तथा चमड़े के बने सामान का विक्रय करना चाहता है । इसके लिए मोहरबंद माँगपत्र दिनांक २१–६–६५ के दो बजे (मध्यान्ह) तक लिये जायेंगे । सामान का निरीक्षण किसी भी दिन, छुट्टियों के अलावा, प्रातः ८ बजे से सायं ३ बजे तक किया जा सकता है । मांग-पत्र स्वीकार होने तथा सूचना मिलने के ३ दिन के अन्दर उस माल की सम्पूर्ण कीमत का चौथाई भाग जमा कराना पड़ेगा और जमा करने की तारीख से ७ दिन के भीतर सम्पूर्ण शेष मूल्य भी अदा करना होगा, अन्यथा जमा की हुई रकम जब्त करली जायेगी । मांगपत्र खोलने वाले अधिकारी को

यह अधिकार होगा कि वह किसी भी मांग-पत्र को, बिना कारण बताये हुए, स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है।

ह० के. एम. कल्ला
प्रधानाचार्य

७. पत्र—

किसी भी व्यक्ति या संस्था की ओर से किसी अन्य व्यक्ति या संस्था को लिखा जाता है। पत्र अनेक प्रकार के होते हैं जैसे व्यक्तिगत, व्यापारिक, राजनीतिक आदि। व्यक्तिगत पत्र प्रायः तीन प्रकार के होते हैं—भावात्मक, तथ्यात्मक एवं वर्णनात्मक। इनका एक चौथा प्रकार इनमें से किसी दो या अधिक के तत्वों के सम्मिश्रण से बनता है। तथ्यात्मक, राजनीतिक आदि पत्रों में भावात्मकता नहीं आने दी जाती और यदि आती है भी तो केवल नाम के लिये, तथ्यात्मक या विवरणात्मक शुष्कता को रसात्मक शक्ति देने के लिए। आजकल पत्रों का एक और प्रकार आलोचनात्मक भी होता है। इसमें किसी व्यक्ति, वस्तु या स्थान के संबंध में लेखक किसी व्यक्ति को अपने विचार प्रेषित करता है। ऐसे अनेक प्रकारों के उदाहरण देना यहां संभव नहीं है। केवल एक आलोचनात्मक पत्र का उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

सम्पादक, धर्मयुग

अजमेर
२१–४–६५

प्रिय महोदय,

२१–६–६५ के 'धर्मयुग' में 'इन आलोचनाओं की कसोटी क्या है?' शीर्षक विचारपूर्ण लेख पढ़ा। लेखक को जिस कसौटी की खोज है, वह सचमुच हिन्दी में इधर बहुत दिनों से लक्षित नहीं हो रही है। आजकल पत्र-पत्रिकाओं में जो आलोचनाएं छपती हैं वे पत्रकारिता की देन हैं। उन्हें समालोचना न कहकर 'साहित्य पत्रकारिता की समीक्षा' नाम से भी अभिहित किया जा सकता है। उन्हें समीक्षा या मूल्यांकन की कसौटी पर कसना ठीक नहीं है। कदाचित, डा० चिन्तामणि इसी समीक्षा-पद्धति से असन्तुष्ट हैं और वे इसकी कसौटी ढूंढ

निकालना चाहते हैं। मैं इस परामर्श का स्वागत करता हूँ कि मूल्यांकन के लिए इसे अस्वीकार कर हम सच्ची कसौटी तैयार करें और आलोचना के मान-दण्ड स्थापित करने की दिशा में सक्रिय बनें, तभी हिन्दी साहित्य का सही मूल्यांकन हो सकेगा।

भवदीय
ओंकारनाथ शर्मा
भव्य भवन, नयापथ,
अजमेर।

८. तार—

इसमें भाषा का अत्यन्त संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया जाता है। 'सांप मरे ना लाठी टूटे' वाली कहावत वस्तुतः तार की भाषा में सार्थक होती है। इसका अभिप्राय यह है कि अत्यन्त संक्षिप्त भाषा होते हुए भी आशय विमलित न होने पाये। कई बार ऐसा होता है कि अति संक्षिप्तीकरण के कारण अथवा संक्षिप्तीकरण के सही न होने से तार-प्रेषक की भाषा उसके आशय को व्यक्त नहीं कर पाती है। इससे प्रेषक का आशय कुछ होता है और प्राप्तिकर्ता उसका दूसरा ही अर्थ समझ लेता है। इससे कभी २ बहुत अनिष्ट हो जाता है। अतएव तार की भाषा में बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है। उदाहरण—

पाने वाले का नाम व पता { देवेन्द्र, रजिस्ट्रार
विश्वविद्यालय, लखनऊ

बसंत-पंचमी कमल-विवाह। ५ दिन पूर्व आइये।

प्रेषक
अप्रेषणीय { भूपेन्द्र,
मोहनबाड़ा, देवधर।

९. नोटिस् अथवा टिप्पणियाँ

कार्यालयों के बाबू लोग ऐसे अनेक नोट बनाते हैं, जिन्हें अधिकारी के सामने प्रस्तुत करने के लिए संक्षिप्त किया जाता है। नोटों के विचार-बिन्दु उपक्रम होते हैं। साथ ही उनमें बहुत सी सामग्री अनावश्यक होती है। अनावश्यक बातों को निकालकर विचार-बिन्दुओं को सक्रम रूप में व्यवस्थित करना आवश्यक होता है। उदाहरण—

'मोहन की तीन शिकायतें आ चुकी हैं। निर्देशक बहुत अप्रसन्न हैं। योग्यता की दृष्टि से वह राम से अधिक योग्य है, परन्तु काम करने से जी चुराता है। वह समय पर आना तो मानों जानता ही नहीं है। कुछ पूछने पर टकासा जवाब दे देता है। निर्देशक ने लिखा है कि उसकी साथियों से भी बनती नहीं है। उसके कारण कार्यालय में अनुशासनहीनता आगई है। इसलिए कार्यालय की स्थिति सुधारने के लिए उसका तबादला आवश्यक है।'

इस प्रकार हमारे सामने संक्षिप्तीकरण के लिए ६ विधाएं प्रमुख रूप से प्रस्तुत होती हैं। इनके अतिरिक्त भी कुछ और विधाएं हो सकती हैं। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि विषय-रूप की दृष्टि से संक्षिप्तीकरण दो प्रकार का होता है—(१) किसी स्वतन्त्र विषय (Continuous matter) का, और (२) पत्र-व्यवहार (Correspondence) का। किसी पत्र, लेख, वक्तव्य, भाषण इत्यादि स्वतन्त्र विषय का संक्षिप्तीकरण पत्र-व्यवहार के संक्षिप्तीकरण से भिन्न होगा। पत्राचार या पत्र-व्यवहार के संक्षेपण के लिए प्रायः दो पद्धतियां प्रचलित हैं —(१) प्रवाह-संक्षेपण, (२) तालिका-संक्षेपण। प्रवाह-संक्षेपण के समग्र पत्राचार का संक्षेपण पत्रों के क्रमानुसार वर्णात्मक रूप में दिया जाता है। तालिका-संक्षेपण में एक तालिका बनाई जाती है और उसके स्तम्भों में प्रत्येक पत्र का विवरण दे दिया जाता है। इस तालिका में साधारणतः निम्नलिखित स्तम्भ होते हैं—

क्रमसंख्या	पत्रसंख्या	दिनांक	प्रेषक	प्रेषिती	पत्र का विषय (संक्षिप्त रूप)
१.	२.	३.	४.	५.	६.

पहले स्तम्भ में पत्रों की क्रमसंख्या क्रमानुसार अंकित करनी चाहिये, दूसरे में पत्र में दी हुई संख्या अंकित की जानी चाहिये, तीसरे में पत्र का दिनांक, चौथे में प्रेषक (पत्र भेजने वाले) का नाम और पता, पांचवें में उसका नाम व पता जिसे पत्र भेजा जाये, तथा छठे में प्रत्येक पत्र का विषय (संक्षेप में) लिखा जाना चाहिए।

: ६ :

संक्षिप्तीकरण के गुण

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि संक्षिप्तीकरण में मानसिक प्रशिक्षण एवं व्यायाम, दोनों की आवश्यकता होती है। उत्तम संक्षिप्तीकरण के कुछ गुण होते हैं; अतएव संक्षेपक को उनका ध्यान रखना चाहिए। वे गुण इस प्रकार हैं—

१. **पूर्णता**—संक्षिप्तीकरण या संक्षेपण का आवश्यक गुण यह है कि वह स्वतःपूर्ण हो। पूर्णता के लिए भाषा का दुहराना आवश्यक नहीं है, आवश्यक होती है यह बात कि उसमें कोई महत्त्वपूर्ण बात छूट न जावे। संक्षेपक को यह बात बड़ी सतर्कता से समझनी चाहिए कि वह जिस अवतरण अथवा अनुच्छेद का संक्षेपण करना चाहता है या करने जा रहा है उसमें आवश्यक और अनावश्यक अंश-अंश कौन-कौन से हैं। इन अंशों की परीक्षा बड़ी सावधानी से करनी चाहिए। इस सावधानी के लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है। संक्षिप्तीकरण में उन्हीं बातों का आकलन होना चाहिये जो मूल अवतरण या अनुच्छेद में हों। इसके अतिरिक्त उन बातों का विसर्जन कर देना चाहिए जो अनावश्यक होती हैं। संक्षेपक न तो मूल भाव में किसी विस्तार को जोड़ सकता है और न वह मूल से संबद्ध किसी ऐसे विस्तार को छोड़ ही सकता है जिसके कारण मूलभाव का ह्रास हो जाये। मूल विषय पर जितने बल की आवश्यकता है संक्षिप्तीकरण में उतना ही मिलना चाहिये। अनावश्यक विस्तार तथा मूलभाव की क्षयकारिणी कतर-छाँट, दोनों ही संक्षेपण में वर्जनीय हैं। संक्षपक को यह बात अपने ध्यान में निरन्तर रखनी चाहिये कि संक्षिप्तीकरण व्याख्या, आशय, भावार्थ, सारांश आदि से भिन्न होता है।

२. **संक्षिप्तता**—संक्षेपण का यह एक प्रमुख गुण है। यद्यपि संक्षेपण के आकार प्रकार के संबंध में कोई नियम 'इत्थमिद' कहकर नहीं बनाया जा सकता है। ऐसे किसी नियम का निर्धारण एक भयंकर प्रतिबन्ध सिद्ध हो सकता है जिससे कभी-कभी संक्षेपण बहुत आहत हो सकता है। फिर भी सामान्य रूप से संक्षिप्तीकरण मूल का तृतीयांश होना चाहिये, ऐसी ही

मान्यता लगभग रूढ हो गई है । संक्षेपण में व्यर्थ के विशेषण, दृष्टान्त, उदाहरण, व्याख्या एवं वर्णन को स्थान नहीं दिया जा सकता है । लम्बे-लम्बे शब्दों, पदों और वाक्यों में कुशलता के योग से मितव्ययता बरतनी चाहिये । अर्थ को मूल के दो शब्द व्यक्त करते हैं उसी को कुशल संक्षेपक एक में भर सकता है । समासों के प्रयोग से यह एवं वाक्य विस्तार छोटा बनाया जा सकता है । शब्द-संख्या के निर्धारित होने की दशा में संक्षेपण उसी सीमा में आबद्ध रहना चाहिये । इतने पर भी शब्द-संख्या का कितना ही कठोर प्रतिबन्ध मूल-भाव का ह्रास करने के लिए उतारु नहीं हो सकता है ।

३. स्पष्टता—स्पष्टता भी संक्षेपण का आवश्यक गुण है । संक्षेपण की अर्थ-व्यंजना सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिए । 'सरल' से तात्पर्य है ऐसी व्यंजना जो पद-विन्यास की जटिलता से दुरूह न हुई हो । संक्षिप्तीकरण के अर्थ को समझने के लिए मूल को पढ़ने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए । इसलिये स्पष्टता न केवल आवश्यकता है, वरन् अनिवार्य है । इसके संबंध में संक्षेपक को सावधानी रखनी चाहिये । संक्षेपक इस बात को ध्यान में रखे कि संक्षेपण-पाठक के सामने मूल अवतरण नहीं होता है । इसलिए संक्षिप्त रचना में स्पष्टता अवश्य होनी चाहिए ।

४. भाषा की सरलता—भाषा की सरलता शब्दों, पदों और वाक्यों—तीनों में निहित रहती है । क्लिष्ट एवं अप्रचलित शब्द भाषा को कठिन बनाते हैं । शब्दों के कभी-कभी कई अर्थ होते हैं, उनमें से प्रचलित अर्थ ही सरलता की रक्षा करते हैं । अप्रचलित एवं अप्रयुक्त शब्द संक्षेपण में वर्जित हैं । इसके अतिरिक्त शब्द का अपना स्थान और अपनी संगति नियत है । इनमें हेर-फेर कर देने से भी भाषा में कठिनता आ जाती है । लेखक को यह स्वतंत्रता नहीं है कि वह किसी शब्द पर किसी अपने-नये अर्थ का भार डालदे । ऐसे भार को शब्द न तो सह ही सकता है और न उसे सहने के लिए विवश ही करना चाहिए । समास डाले जायें तो वे छोटे-छोटे, सरल एवं स्पष्ट हों । 'अष्टभुजा' जैसे समास तो ठीक हैं किन्तु 'कृतप्रयत्नावसर' अथवा 'रूपाकर्षण-भ्रान्तदृष्टि' जैसे समासों का प्रयोग संक्षिप्तीकरण की भाषा को क्लिष्ट बना देता है । इसके अतिरिक्त संक्षिप्तीकरण की भाषा को अलंकृत करने की चेष्टा भी भाषा को कठिन बना देती है क्योंकि अलंकार अर्थ को सुबोध अवश्य बनाते

हैं, किन्तु उसकी सरलता को आहत करते हैं। इससे भाषा में चमत्कार लाने या अर्थाभिव्यंजना को घुमाव-फिराव देने की प्रवृत्ति संक्षिप्तीकरण में वर्जित है। सरल, सुस्पष्ट एवं आडम्बरहीन भाषा ही संक्षिप्तीकरण के उपयुक्त होती है।

५. शुद्धता—संक्षिप्तीकरण में भाषा की शुद्धता के अतिरिक्त भाव की शुद्धता भी अपेक्षित है। भाषा की शुद्धता से तात्पर्य है ऐसी भाषा से जो व्याकरण आदि की दृष्टि से तो शुद्ध हो ही साथ ही वर्तनी की दृष्टि से भी शुद्ध हो। उदाहरण के लिए 'सित' तथा 'सीत' को ले सकते हैं। यदि 'सित' का 'सीत' हो जाता है तो अर्थ ही बदल जाता है। इसी प्रकार 'पालि' का 'पाली' हो जाने पर अर्थ कुछ का कुछ हो जाता है। भाव-शुद्धता से अभिप्राय है कि मूलभाव में कोई मिश्रण या मिलावट नहीं होनी चाहिये। संक्षिप्तीकृत रचना में वही तथ्य या विषय रहना चाहिये, जो मूल संदर्भ में हो। कोई बात अशुद्ध या विचलित रूप में प्रस्तुत नहीं की जानी चाहिए, अन्यथा भिन्नार्थ बोध की बड़ी संभावना रहती है। संक्षेपण में मूल के आशय को विकृत या परिवर्तित करने का अधिकार संक्षेपक को नहीं होता। संक्षेपण में संक्षेपक की ओर से किसी टीका–टिप्पणी के लिए भी कोई गुंजाइश नहीं होती। साथ ही इस रचना में तार की भाषा के लिए भी कोई अवकाश नहीं होना चाहिए, व्याकरण-सम्मत भाषा ही वाञ्छनीय समझी जाती है।

६. प्रवाह और क्रम-बद्धता:—कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि किसी अवतरण में मूलभाव के साथ अनेक भाव इस प्रकार संबद्ध रहते हैं, उनमें एक क्रम बना रहता है और कभी-कभी उनके संबंध में कोई क्रम नहीं होता। अक्रमता को सक्रमता में लाना संक्षेपक का कर्तव्य है। मूल की सक्रमता को छेड़ने का अधिकार संक्षेपक को तभी हो सकता है जबकि वह संक्षेपण को सरल और स्पष्ट कर रहा हो। क्रमबद्ध भाव तथा प्रवाहपूर्ण भाषा संक्षिप्तीकरण की विशेष आवश्यकता है। क्रम और प्रवाह के संतुलन से ही संक्षेपण का स्वरूप निखरता है। इसलिए इसमें सुसंबद्ध और सुगठित वाक्यों की आवश्यकता होती है। गठन की दृष्टि से संक्षेपण इस प्रकार का होना चाहिये कि उसका खण्डन या विभाजन न हो सके। प्रवाह के निर्वाह के लिए वाक्य-रचना में कहीं-कहीं 'अतः', 'अतएव', 'तथापि' जैसे शब्दों का प्रयोग किया

जा सकता है। भाव-क्रम में तर्क-क्रम (Logical Sequence) का होना भी आवश्यक है। अतएव संक्षेपण में संक्षिप्तता (Brevity), स्पष्टता (Clearness) तथा क्रम-बद्धता (Coherence) का होना बहुत आवश्यक है।

: ७ :

संक्षिप्तीकरण के नियम

यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि संक्षेपण-प्रक्रिया किन्हीं कठोर-नियमों में आबद्ध नहीं की जा सकती, फिर भी कुछ सामान्य नियमों के बिना काम भी नहीं चल सकता। उनको हम 'काम चलाऊ नियम' कह सकते हैं। विषय और शैली की दृष्टि से ये नियम दो प्रकार के हो सकते हैं— १. विषयगत नियम, २. शैलीगत नियम।

१. विषयगत नियम

(क) विषय से अवगत होने के लिए मूल अवतरण को ध्यानपूर्वक पढने की आवश्यकता होती है। जब तक मूल का भावार्थ (Substance) स्पष्ट न हो जाये तब तक संक्षेपण लिखना उचित नहीं है। मूल अवतरण को कम से कम तीन बार पढना चाहिये। यदि वह फिर भी स्पष्ट न हो तो उसे एक-दो बार और भी पढा जा सकता है।

(ख) मूल के भावार्थ को भलिभाँति समझ लेने पर उन शब्दों, पदों अथवा वाक्यों को रेखांकित कर देना चाहिए जिनका मूल विषय से सीधा संबंध हो अथवा जिनका भावों या विचारों की अन्विति में विशेष महत्त्व हो। इससे कोई भी तथ्य दृष्टि से ओझल न हो पायेगा।

(ग) संक्षिप्तीकरण मूल अवतरण के भाव का प्रतिरूपण मात्र होता है, इसलिए इसमें यह ध्यान रखने की आवश्यकता होती है कि संक्षेपक की ओर से कोई टीका-टिप्पणी न हो। इसमें किसी आलोचना-प्रत्यालोचना को भी स्थान नहीं मिलना चाहिए। संक्षेपक को न तो अपना मत देने का अधिकार है और न किसी के मत के खण्डन का अधिकार है। उसे मूलभाव या

विचार के अधीन रह कर उसके विस्तारों या तर्कों का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत करना चाहिए।

(घ) संक्षेपण को अंतिम रूप देने से पहिले रेखांकित वाक्यों के आधार पर उसकी रूप-रेखा या आलेख्य (Sketch or draft) तैयार कर लेना चाहिए, फिर उसमें उचित और आवश्यक संशोधन जोड़-तोड़ करना चाहिए। मूल अवतरण के भाव-क्रम में आवश्यक परिवर्तन किया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि जो क्रम मूल में है संक्षेपण में भी वही रहे, किन्तु विचारों या भावों का तारतम्य बाधित नहीं होना चाहिए। पाठक को ऐसा बोध होना चाहिए एक वाक्य दूसरे से सीधा सम्बन्ध रखे हुए है।

(ङ) उक्त आलेख्य (draft) को अंतिम रूप देने से पूर्व उसे एक-दो बार ध्यान से पढ लेना चाहिए, जिससे कोई आवश्यक भाव परित्यक्त न हो जाये। जहाँ तक संभव हो, आलेख्य अति संक्षिप्त रखा जाये। हाँ, शब्द संख्या के निर्धारित होने की दशा में निर्देश का पालन होना चाहिए। सामान्यतया आलेख्य को मूल का एक तिहाई होना चाहिये।

(च) अन्त में संक्षेपण को व्याकरण के सामान्य नियमों के अनुसार एक क्रम में लिख देना चाहिये। यही संक्षेपण का अन्तिम रूप है।

(छ) समग्र प्रक्रिया के बाद संक्षेपण के भावों और विचारों के अनुकूल एक शीर्षक दे देना चाहिये जो संक्षिप्ततम और सभी तथ्यों को समेटने की क्षमता रखने वाला हो, क्योंकि शीर्षक ही पूरे भाव-संघात का प्रतिनिधित्व करता है।

२. **शैलीगत नियम**—शैली से तात्पर्य है रचना-पद्धति, रचना की सज-धज उसकी वेश-भूषा। शब्द आकलन, पद और वाक्य-विन्यास शैली के ही रूप हैं। शैली से सम्बन्धित कई नियम संक्षेपण का निर्देश करते हैं। वे ये हैं—

(क) संक्षेपण में विशेषणों और क्रिया-विशेषणों को अवसर एवं अवकाश नहीं दिया जाना चाहिये। इनका बहिष्कार आवश्यक है। इसके अतिरिक्त संक्षेपण की शैली अलंकृत नहीं होनी चाहिए। उसका सहज और आडम्बरहीन होना नितान्त आवश्यक है।

(ख) मूल में वही शब्द संक्षेपण में रखे जा सकते हैं जो अर्थ-व्यंजना में अपना अनिवार्य योग दे सकें, जिनके न लेने से अर्थ-व्यंजना बन्धित

हो जाए अन्यथा मूल प्रकारण की शब्दावली के स्थान पर संक्षेपक की अपनी शब्द-संपत्ति का प्रयोग अर्हणीय है। इसके साथ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि मूलभाव परिवर्तित या विसर्जित न हो जाये।

(ग) संक्षेपण में मूल अवतरण के पदों या वाक्य-खण्डों के लिए एक-एक शब्द का प्रयोग होना चाहिए जिससे मूल के भाव की अभिव्यक्ति सुबोध एवं संबद्ध हो, जैसे—

वाक्य खण्ड		एक शब्द
१. कष्ट से सम्पन्न होने वाला कार्य	...	कष्ट साध्य
२. जिसका मन कहीं दूसरी जगह हो	...	अन्यमनस्क
३. किसी विषय का विशेष ज्ञान रखने वाला	...	विशेषज्ञ
४. दोनों नदियों के मिलने का स्थान	...	संगम
५. जिसका निवारण न किया जा सके	...	अनिवार्य

(घ) मुहावरों और कहावतों के प्रयोग हटाकर सामान्य शब्दावली से अर्थ व्यक्त करना चाहिए क्योंकि मुहावरों का अर्थ समझने में कभी-कभी कठिनाई या भ्रांति हो सकती है। इसलिए मुहावरों के अर्थ को संक्षेपण में कम से कम शब्दों में स्पष्ट कर देना चाहिए। मुहावरे के लिए मुहावरा रखना ठीक नहीं है।

(ङ) संक्षेपण की शैली अलंकृत न होकर सादा होनी चाहिए, इसलिए उसमें उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष आदि अलंकारों का प्रयोग नहीं होना चाहिये। अप्रासंगिक बातों, उद्धरणों और विचारों की पुनरावृत्ति को भी हटा देना चाहिये। संक्षेपण की भाषा-शैली इतनी सरल और स्पष्ट होनी चाहिये कि पाठक को कहीं दुर्बोधता या क्लिष्टता का सामना न करना पड़े।

(च) संक्षेपण में व्याकरण के नियमों का अनुपालन बहुत आवश्यक है क्योंकि इससे शैली में स्पष्टता और भाषा में सुबोधता आती है। तार की भाषा संक्षेपण में वर्जित है।

(छ) संक्षेपण अपरोक्ष कथन को स्वीकार नहीं कर सकता। जब तक संक्षेपण के अवतरण का सीधा संबंध संक्षेपक से न हो, अन्य पुरुष सर्वनाम का ही प्रयोग होना चाहिये। जिस प्रकार किसी समाचार-पत्र का संवाददाता अपने

वाक्यों की रचनायें प्राय: परोक्ष-कथन का ही प्रयोग करता है उसी प्रकार उसका प्रयोग संक्षेपण में भी होना चाहिए । यह अत्यन्त आवश्यक भी है । संवादों से भरे अवतरण में इसका प्रयोग अनिवार्य है । प्रश्नोत्तर शैली में भी यही बात लागू होती है । यहाँ इतनी सी बात ध्यान में रखने की है कि जब हिन्दी में वाक्यों को परोक्ष-शैली में लिखना होता है तब सर्वनाम, क्रिया या काल को बदलने की जरूरत नहीं होती, केवल 'कि' जोड़ देने से ही काम चल जाता है; किन्तु अंग्रेजी में इन्हें बदलने की आवश्यकता होती है । उदाहरण देखिये:—

प्रत्यक्ष उक्ति (Direct Narration)—राम ने कहा, 'मैं जाता हूँ' ।

परोक्ष उक्ति (Indirect Narration)—राम ने कहा कि मैं जाता हूँ ।

(ज) संक्षेपण की शब्दावली में संयम और मितव्ययता का उपयोग होना चाहिए । उसका एक भी शब्द व्यर्थ और अशक्त नहीं होना चाहिए और उन्हीं शब्दों का प्रयोग नहीं होना चाहिए जिनका प्रासंगिक महत्व हो । मूल अवतरण के उन्हीं शब्दों का प्रयोग होना चाहिये जो भाव-व्यंजक, प्रसंगानुकूल एवं सार्थक हों तथा जिनके विना संक्षेपण का काम न चल सकता हो, अन्यथा उन शब्दों के दोहराने की कोई आवश्यकता नहीं है । अप्रचलित शब्दों के स्थान पर प्रचलित और सरल शब्दों का प्रयोग ही आवश्यक है ।

(झ) साहित्यिक चमत्कार एवं काव्यात्मक लालित्य लाने के प्रयत्न से संक्षेपण बिगड़ जाता है और उसमें अस्पष्टता, भ्रांति एवं दुरूहता की संभावना हो सकती है । इसलिए संक्षेपण की भाषा को सजाने और संवारने की आवश्यकता नहीं है और न रसिकतावश उसके भावों को लालित्यपूर्ण बनाने की ही आवश्यकता है । संक्षेपण-रचना साफ और स्पष्ट होनी चाहिये । इसमें कल्पना की उड़ानें वर्जित हैं । कहने की आवश्यकता नहीं है कि संक्षेपण-कला तलवार की धार है, जिस पर चलना अत्यन्त दुरूह है । इसके लिए शब्द बोध, चयन-शक्ति और कुशल-प्रयोग के साथ तीव्र मनोयोग की आवश्यकता है । यह काम अभ्यास के द्वारा ही संभव होता है । इसके लिये यह बहुत आवश्यक है कि संक्षेपक की दृष्टि भावुक की दृष्टि न होकर वस्तुवादिनी ही हो ।

(ञ) संक्षेपण का पद-विन्यास अथवा वाक्य-विन्यास लघुतापूर्ण एवं

सरल होना चाहिये । उसमें लम्बे-लम्बे वाक्यों या वाक्य-खण्डों का व्यवहार नहीं होना चाहिये अन्यथा सरलता और स्पष्टता आहत होने की संभावना हो जाती है । इकहरे शब्दों, छोटे पदों या वाक्यों, सरल भावों एवं आडम्बर-हीन मुक्त शैली से संक्षेपण का लक्ष्य सिद्ध हो जाता है ।

(ट) संक्षेपण में समानार्थक या पर्यायी शब्दों का प्रयोग नहीं होना चाहिये, इसमें भावों की पुनरुक्तिमात्र होती है और यह दोष है । ऐसे वाक्यों का प्रयोग वर्जित है—

"स्वतन्त्रता, बन्धनहीनता, स्वाधीनता, मुक्ति ही आजादी है ।" इस वाक्य में अनेक समानार्थक शब्दों का प्रयोग संक्षेपण-प्रक्रिया के प्रतिकूल है । भाषण में प्रभाव दिखाने के लिए वक्ता तो इस प्रकार की शैली का सहारा ले सकता है, किन्तु संक्षेपक ऐसा नहीं कर सकता । संक्षेपण में उक्त वाक्य का रूप ऐसे हो सकता है—'आजादी का दूसरा नाम मुक्ति है । संक्षेपण कला न्यूनतम शब्दों में ही निखरती है ।

(ठ) जिस प्रकार पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग से पुनरुक्तिदोष पैदा हो जाता है, उसी प्रकार समानार्थक वाक्यों या वाक्यांशों के प्रयोग से भी पुनरुक्तिदोष पैदा हो जाता है । इसके अतिरिक्त भावों और विचारों में भी पुनरुक्ति हो सकती है । उदाहरण के लिए—"कलाकार रंगमंच पर एक के बाद एक क्रमशः आते चले गये ।" इस वाक्य में 'क्रमशः' और 'एक के बाद एक' ये दोनों एक ही भाव के द्योतक हैं । दोनों का एक ही अर्थ होने से एक सरलता से हटाया जा सकता है ।

(ड) अन्त में, संक्षेपण में प्रयुक्त शब्दों की संख्या लिख देनी चाहिये ।

(ढ) पत्राचार के मूलावतरण में यदि किसी अधिकारी का नाम और पद, दोनों दिये हों, वहां नाम को हटाकर केवल पद का ही उल्लेख करना चाहिए ।

निष्कर्ष—निष्कर्ष यह है कि संक्षेपण की लेखन-विधि अन्वय, सारांश, भावार्थ, आशय, मुख्यार्थ, आलेख्य (रूप-रेखा) आदि से नितान्त भिन्न होती है । जिस अवतरण या अनुच्छेद का संक्षिप्तीकरण अभिप्रेत हो, उसको साव-धानी से तब तक पढ़ना चाहिये जब तक आशय स्पष्ट न हो जाये । मूल के

आशय और विषय को अच्छी तरह समझने का प्रयत्न करना चाहिए। उसके महत्त्वपूर्ण अंशों को रेखाँकित करके उनके आधार पर एक आलेख्य (draft) तैयार किया जाना चाहिए जो मूल के एक तिहाई के बराबर होना चाहिये। यदि आलेख्य में कहीं अस्पष्टता की प्रतीति हो तो मूलावतरण को इस दृष्टि से पुनः पढ़ना चाहिये कि मूल से कहीं कोई बात घट-बढ़ तो नहीं गई है। प्रथम आलेख्य में उपयुक्त संशोधन कर लेने पर उसका द्वितीय रूप लिख लेना चाहिये और एक उपयुक्त किन्तु बहुत छोटा शीर्षक देकर उसको एक बार पुनः पढ़ लेना चाहिये जिससे प्रवाह-विच्छेद या क्रम-भंग दोष की, यदि कहीं हो गया हो, अवगति हो जाये। भाषा की शिथिलता और अनुपयुक्त शब्दों के प्रयोग में सुधार करके अन्तिम रूप दे देना चाहिये।

: ८ :

संक्षेपक की योग्यता

संक्षेपक कौन होता है ?—संक्षेपक वह रचनाकार है जो 'गागर में सागर' भरने की शक्ति रखता हो। कुछ लोगों का यह खयाल है कि 'गागर में सागर' बनाना बहुत दुरूह कार्य है किन्तु मेरा विचार यह है कि सागर को गागर में भरना बहुत ही दुरूह है। इसमें जिस दृष्टि की आवश्यकता है वह होती है सूक्ष्म-दर्शिनी। इसके अतिरिक्त और भी बहुत से गुणों की आवश्यकता होती है। जो इस प्रकार हैं—

१. **सूक्ष्म-भेदक दृष्टि**—संक्षेपक के पास ऐसी दृष्टि होनी चाहिए जिससे वह मूल अवतरण को पढते ही यह जान सके कि उसमें मुख्य और गौण बातें कितनी और कहाँ हैं। गहरी ध्यान-शक्ति ही मुख्य और गौण, विशेष और सामान्य तथा आवश्यक और अनावश्यक का अन्तर व्यक्त कर सकती है। जो संक्षेपक इधर-उधर की बहक से बचकर अप्रासंगिक बातों के पचड़े में नहीं पड़ता वही कुशल संक्षेपक है। ऐसा व्यक्ति केवल काम की बातों को ही अपनाता है। यद्यपि सूक्ष्म-भेदक दृष्टि निसर्ग की देन होती है फिर भी अविरल अभ्यास से उसकी अर्जना की जा सकती है।

२. **शब्द-भण्डार**—जिस व्यक्ति के पास प्रयोग के लिए अच्छे-अच्छे शब्द नहीं हैं, वह अच्छा संक्षेपक नहीं हो सकता। संक्षेपण का अधिकारी वही व्यक्ति है जिसके पास पर्याप्त शब्द-भण्डार है और जो अभिव्यक्ति में संक्षिप्तता, सरलता, क्रमिकता और स्पष्टता समाहित कर सकता है। अच्छा संक्षेपक समानार्थक शब्दों के प्रयोग में बड़ी सावधानी और कुशलता बरतता है। जिस व्यक्ति के पास अच्छे अच्छे शब्द होते हैं वही मूल अवतरण में प्रयुक्त शब्दों के बदले समानार्थक शब्दों का व्यवहार कर सकता है। शब्द-भण्डार बढाने का प्रयत्न किया जा सकता है, और वह भी कोष के द्वारा।

३. **संक्षिप्तता**—उपर्युक्त दोनों गुणों के योग से संक्षिप्त रूप में जो कुछ भी लिखेगा वह संक्षेपण होगा, चाहे वह किसी वकील का संक्षिप्त नोट हो, किसी समाचार पत्र के संवाददाता की संक्षिप्त टिप्पणी हो या किसी शिक्षक का क्लास नोट हो। मूलबात यह है कि संक्षेपण में संक्षिप्तता का होना अनिवार्य है। उत्कृष्ट संक्षेपक लम्बी-चौड़ी बातों को अति संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने की कला जानता है।

४. **क्रम-बद्धता**—योग्य संक्षेपक संक्षेपण रचना इस प्रकार करता है कि उसके पढने पर पाठक को अनेक तथ्यों की क्रम-बद्धता में मोतियों की माला की सी एकता प्रतीत होती है। वह इस प्रकार की वाक्य-योजना प्रस्तुत करता है कि एक वाक्य दूसरे से विच्छिन्न प्रतीत नहीं होता। जिस प्रकार किसी कल के पुर्जे आपस में एक दूसरे से कस कर कल की एकता दिखलाते हैं। उसी प्रकार अनेक शब्दों और वाक्यों की कसावट संक्षेपण की एकता प्रकट करती है। क्रम-बद्धता का एक गुण भाषा की प्रवाहमयता भी है। क्रम-बद्धता से भाषा-प्रवाह को बड़ी सहायता मिलती है।

आवश्यक निर्देश—

१. संक्षेपण में मूल अवतरण के उदाहरण, दृष्टान्त, उद्धरण और तुलनात्मक विचारों का समावेश नहीं होना चाहिए।
२. संक्षेपण सामान्य रूप से भूतकाल और परोक्ष कथन में लिखा जाना चाहिये।
३. संक्षेपण में अन्य पुरुष का प्रयोग होना चाहिये।

४. संक्षेपण की भाषा सरल, किन्तु मुहावरों और अलंकारों से मुक्त होनी चाहिए।

५. मूलभाव से असम्बद्ध सभी अनावश्यक बातों को छाँटकर निकाल देना चाहिये ।

६. यदि मूल अवतरण में एक भाव या विचार को गौण भावों या विस्तारों के संबंध से अनेक अनुच्छेदों में सजा दिया गया हो तो संक्षेपण को भी उतने ही पैराग्राफों में सजाने की कोई आवश्यकता नहीं है किन्तु जहाँ अनेक भावों या विचारों को अनेक अनुच्छेदों में प्रस्तुत किया गया हो तो एक-एक अनुच्छेद में एक-एक विचार का संक्षिप्त रूप लिख देना चाहिये ।

७. संक्षेपण का प्रारम्भिक अथवा प्रथम वाक्य ऐसा होना चाहिए कि वह मूल विषय को स्पष्ट कर दे; किन्तु इस नियम का अपवाद भी हो सकता है ।

८. संक्षेपण निर्दिष्ट शब्दों में लिखा जाना चाहिए । किसी निर्देश के न मिलने पर संक्षेपण कम से कम मूल का एक तिहाई होना चाहिये ।

अन्यत्र यह कहा जा चुका है कि संक्षेपण कला जादू से नहीं आ सकती है, अभ्यास से आती है । इसके लिए प्रभूत सविचार अभ्यास एवं आत्म-संयम की आवश्यकता होती है । अभिव्यक्ति के नियत रूप पर पहुंचने के लिए शब्दों, पदों, वाक्यांशों और वाक्यों को रूपायित, पुनः रूपायित तथा प्ररूपायित करने की अविरल आवश्यकता होती है । संक्षेपण में स्वेच्छाचारिता के लिए कोई गुंजाइश नहीं है । कुछ व्याकरणिक युक्तियों के अनुपालन से ही धीरे-धीरे इसका अभ्यास होता है इसलिए छात्रों को संक्षेपण के संबंध में सम्यक् निर्देशन मिलना चाहिये, चाहे वह वाक्य-संक्षेपण ही क्यों न हो । इसके लिए छात्र को तीन प्रकार के संक्षेपण का अभ्यास करना चाहिये—

१. पद या वाक्यांश का संक्षेपण—

(क) पद के स्थान पर शब्द का विनियोग करके—जैसे,

(i) विद्यालय के निकट मैं राम के सम्पर्क में आया ।

संक्षिप्त—मैं विद्यालय के पास राम से मिला ।

(ii) बिना किसी विलम्ब के सदैव प्रिंसिपल के आदेशों का पालन किया गया।

संक्षिप्त—प्रिंसिपल के आदेश सदैव अविलंब पालित हुए।

(iii) उनके लिए जो उस समय अणु की प्रकृति और उसके क्षेत्र के अनुसंधान में लगे हुए थे, पुस्तक बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई।

संक्षिप्त—अणु-अनुसंधाताओं के लिए पुस्तक बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई।

(ख) किसी संज्ञा, विशेषण या क्रिया-विशेषण वाक्यांश के लिए संज्ञा या पद की योजना करके—जैसे,

(i) राजा इतना निर्दय होगा, इस बात ने सबको आघात पहुंचाया।

संक्षिप्त—राजा की निर्दयता ने सबको आहत कर दिया।

(ii) जिस काम को आज कर सकते हो उसे कल के लिए स्थगित करना बुरा है।

संक्षिप्त—काम को स्थगित करना बुरा है।

(ग) किसी विशेषण वाक्यांश के स्थान पर विशेषणों या पदों की योजना करके—जैसे,

(i) इस स्थान पर उन लोगों का आवास है जो न पढ़ सकते हैं, न लिख सकते हैं।

संक्षिप्त—यह स्थान अशिक्षितों का आवास है।

(घ) क्रियाविशेषण वाक्यांश के लिए क्रिया विशेषण या पद की योजना करके—जैसे,

(i) जब हमने मामले की जाँच की तो हमें पता चला कि वह निर्दोष था।

संक्षिप्त—जांच करने पर हमने उसे निर्दोष पाया।

(ii) यदि हम कुनैन का इस्तैमाल करें तो मलेरिया रोग का निवारण हो सकता है।

संक्षिप्त—कुनैन मलेरिया का निवारण करती है।

(ङ) अनेक शब्दों के लिए एक शब्द की योजना करके—जैसे,

(i) हमारा टाइपराइटर आसानी से दूर तक ले जाया जा सकता है।

संक्षिप्त—हमारा टाइपराइटर हल्का है।

(ii) यदि आप खराब आदत वालों से मिलते-जुलते हैं तो आपके चरित्र के खराब होने की भी संभावना हो सकती है।

संक्षिप्त—दूषित सम्पर्क सत्स्वभाव को दूषित करते हैं।

अनेक के स्थान पर एक-शब्द-प्रयोग की सूची—

(i) राज्य की वह सभा जो कानून बनाती है=विधान सभा

(ii) सरकार का वह अंग जो कानून का पालन कराती है
=कार्यपालिका

(iii) सरकार का वह अंग जो कानून की व्याख्या करती है
=न्यायपालिका

(iv) वह व्यक्ति जो अंडे-मांस न खाकर केवल शाक-भाजी खाता है
=शाकाहारी

(v) अपने आपको मारने वाला=आत्महत्यारा

(vi) वे लोग जो एक साथ काम करते हैं=सहयोगी

(vii) वे छात्र जो साथ-साथ पढ़ते हैं=सहपाठी

(viii) ऐसी पद्धति जिसमें कोई उपचार नहीं निभाया जाता
=अनौपचारिक पद्धति

(ix) जिसका निवारण न हो सके=अनिवार्य

(x) जिसका विश्वास किया जा सके=विश्वसनीय

(xi) जिसको कठिनता से किया जा सके=दुष्कर

(xii) ऐसा मार्ग जिस पर कठिनता से चला जा सके=दुर्गम

(xiii) जिसको कठिनता से भेदा जा सके=दुर्भेद्य
(xiv) ऐसी लड़की जिसका विवाह न हुआ हो=कुंवारी कन्या
(xv) जो पढ़ा न जा सके=अपठनीय
(xvi) जो दिखाई न दे=अदृश्य
(xvii) वह मनुष्य पैरों से मार्ग तै करता है=पैदल
(xviii) वह सेवक जो वेतन न ले=अवैतनिक सेवक
(xix) वह जो वेतन से काम करता है=वेतन भोगी
(xx) वह आदमी जो सदैव आशा रखता है=आशावादी
(xxi) ऐसी शासन पद्धति जिसमें समग्र अधिकार प्रजा के होते हैं =प्रजातंत्र

२. **वाक्य-संक्षेपण**—वाक्य के संक्षेपण में प्रमुख विचार को सामने रखकर शब्दों का मितव्यय अपेक्षित एवं उद्दिष्ट होता है। निम्नलिखित नियमों के अनुपालन से लाभ उठाया जा सकता है—

व्यर्थ, चक्करदार तथा अलंकृत अभिव्यक्ति का निवारण करके, जैसे—

(i) एक प्रसिद्ध कवि के ये शब्द कि दुःख अपनी सेना लेकर आता है, उसकी स्मृति में प्रविष्ट हुए।
संक्षिप्त—उसे याद आया कि दुर्भाग्य अकेला नहीं आता।

(ii) समय-पिता ने अपने निर्दय हाथों से उसकी कनपटियों को गहन हिम से आच्छादित कर दिया था।
संक्षिप्त—वह जरा-श्वेत हो गया था।

चेतावनी—वाक्यांशों या वाक्यों के संक्षेपण से किसी अवतरण का संक्षेपण नहीं किया जा सकता, क्योंकि अवतरण अनेक अंगों से नहीं बनता है, वह अपने आप में एक पूर्ण इकाई होता है।

३. **अनुच्छेदों का संक्षेपण**—अनुच्छेद सम्बद्ध वाक्यों का ऐसा समूह होता है जो किसी एक बिन्दु या विषय का विवेचन या विकास करता है। यह हो सकता है कि वह किसी अन्य इकाई का अंग हो, किन्तु उसमें प्रयोजन की एकता होती है। उसके अनिवार्य लक्षण ये हैं—(i) एकता, (ii) एक अच्छा विषय-गर्भित वाक्य, (iii) सतर्क विचार-क्रम, (iv) विविधता, (v) एक

निष्कर्ष-गर्भित पूर्ण वाक्य। आदर्श अनुच्छेद में प्रथम वाक्य सामान्यतया विषय का प्रवर्तन करता है; और प्रत्येक अनुगामी वाक्य में विषय का तर्क-संगत विकास होता है। अन्तिम वाक्य अनुच्छेद का निष्कर्ष प्रस्तुत करता है।

किसी अनुच्छेद के संक्षेपण के समय, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, छात्र का पहला काम विषय या विषय-गर्भित वाक्य की खोज करना है। इसके पश्चात् उसे निष्कर्ष-वाक्य की खोज करनी चाहिये। इसके बाद उन विचारों को महत्त्व देना चाहिये जिनका विषय से सीधा संबंध होता है, किन्तु उनमें प्रमुख भाव या विचार का विस्तारमात्र हो सकता है, अतएव संक्षेपण में उनको छोड़ दिया जाता है। नीचे लिखे उदाहरण का अध्ययन बड़ी सावधानी से करना चाहिये—

"मनुष्य का परिचय उसकी प्रिय पुस्तक और संगति से हो सकता है क्योंकि पुस्तक मनुष्य की ही भांति साथी होती है और यह अर्हणीय है कि व्यक्ति को सर्वोत्तम साहचर्य प्राप्त करना चाहिये, चाहे वह पुस्तकों का हो, चाहे मनुष्यों का। मनुष्य के सर्वोत्तम मित्रों में एक अच्छी पुस्तक भी हो सकती है। जो वह सदैव थी, वही आज भी है और वह कभी परिवर्तित नहीं होगी। वह साथियों में से सबसे अधिक शान्त और आल्हादमय होती है। विपत्काल में वह कभी हमसे विमुख नहीं होती। उसका अनुग्रह हमारे ऊपर सदैव समान रहता है। यौवन में वह आल्हादन और उपदेश करती है और जरा में सुखद एवं संतोषप्रद होती है।"

उपर्युक्त अनुच्छेद में विषयगर्भित वाक्य है 'पुस्तक साथी होती है।' इसमें पुस्तकों की उपयोगिता के 'एक बिन्दु' का वर्णन है। अन्तिम वाक्य में पुस्तकों से मनुष्य जीवन को प्राप्त होने वाले लाभ पर प्रकाश डाला गया है।

पुस्तकें, मित्रों की भांति, मनुष्य के चरित्र का निर्धारण करती हैं। इसलिए उसे सर्वोत्तम पुस्तक पढ़नी चाहिये। अच्छी पुस्तक शान्त और आल्हादक जीवन-साथी है। वह दुःख में मनुष्य को प्रसन्न रखती है, यौवन में पथ-प्रदर्शन करती है और बुढ़ापे में सुख देती है।

संक्षेपण कला के अभ्यासों को प्रारंभ करने से पूर्व हम अपने निष्कर्षों को इस प्रकार रख सकते हैं—

(१) पहले अवतरण को ध्यानपूर्वक पढ़िये, कम से कम तीन बार, आवश्यकता हो तो अधिक भी, जिससे उसका मुख्य भाव अवगत हो जाये।

(२) अवतरण की परीक्षा विस्तारपूर्वक कीजिये जिससे प्रत्येक वाक्य, पद और शब्द का अर्थ स्पष्ट हो जाये।

(३) अपरिचित शब्दों या अभिव्यक्तियों से भीत न हों; आपको अवतरण का केवल सामान्य अर्थ देना है।

(४) एक ऐसा छोटा शीर्षक सोचिये जिसमें मुख्य भाव का सार आ जाये।

(५) विषय की अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक बिन्दुओं को छांटकर टीप लीजिये।

(६) संक्षेपण की दीर्घता के संबंध में सतर्क रहिये। वह अवतरण के एक-तिहाई भाग से बड़ा न हो।

(७) अपने शब्दों में अवतरण का संबद्ध एवं स्वपूर्ण सार दीजिये। यह ध्यान रखिये कि संक्षेपण में मूल के आवश्यक बिन्दु न छूटने पायें, साथ ही कोई व्यर्थ बात समाविष्ट न हो। संक्षेपण शब्द छोड़कर न बनाया जाये, वरन् मूल को नया रूप दिया जाये। न कुछ जोड़िये, न आलोचना कीजिये और तथ्यों का संशोधन भी न कीजिये।

(८) संक्षेपण अन्यपुरुष-पद्धति में विराम-चिह्नों के साथ किया जाये।

(९) दूसरा संशुद्ध आलेख्य तैयार कीजिये तथा भाषा सरल और स्वाभाविक बनाइये।

(१०) नीचे, आवश्यकता हो तो, संक्षेपण के शब्दों की संख्या लिख दीजिये।

———

संक्षेपण के कुछ उदाहरण

१. कथात्मक शैली

तेनसिंह का साहस देखकर उनके फ्रांसीसी साहब चकित रह गये। अन्त तक वे बहुत थक गये। यहां तक कि उनके पैर की दो अँगुलियां मामूली ढंग से जम गयी थीं। कहा जाता है कि उनकी वीरता देख कर **भावुक फ्रेंच साहब इतने जोश** में आये कि वह तेनसिंह को हार पहनाना चाहते थे; पर वहां पुष्प नहीं थे, इसलिए खाने के लिए जो **समोसे रखे थे उनकी माला पहना दी**। उक्त अभियान में दो साहब मारे गये, पर उसी वर्ष शीत में जिस अभियान में तेनसिंह ने भाग लिया, उसमें वह स्वयं मृत्यु के जबड़ों में जाकर लौट आये। वह कअ्रू के दक्षिण में जार्ज फ्रेई के साथ **कोक्तंग शिखर पर चढ़ रहे** थे, जो १६,६०० फीट ऊँचा है। **सन् १६५१ के २६ अक्टूबर को जार्ज फ्रेई के साथ जहां** से वे जा रहे थे, वह बहुत **ढाल वाली** जगह थी। कुछ **बर्फ जमी** थी, पर बहुत पतली। ऊपर एक और पहाड़ी थी, जिस पर ढलान और भी अधिक थी। फ्रेई आगे-आगे थे। तेनसिंह दस कदम पीछे थे। और एक दूसरा शेरपा औदग्वा उनके भी दस कदम पीछे था। एकाएक **फ्रेई का पैर फिसला** और वह तेनसिंह की ओर चला। तेनसिंह **ने उसे बचाने की चेष्टा** की, पर स्वयं उनके पैर लड़खड़ा **गये**।

प्रक्रिया—

(क) संक्षेपण के आधार-बिन्दु—

१. तेनसिह साहसी और वीर थे।
२. फ्रांसीसी साहब जार्ज फ्रेई उस पर मुग्ध थे।
३. उन्होंने प्रसन्नता से उसको समोसों की माला पहना दी।
४. जब २६ अक्टूबर, १६५१ को वे तेनसिंह के साथ फ्रेई कोक्तंग शिखर पर चढ़ रहे थे तो बर्फीली ढलान से फिसल पड़े।
५. चेष्टा करने पर भी तेनसिंह उन्हें न बचा सके।

(ख) प्रारूप--

तेनसिंह साहसी और वीर थे। फ्रांसीसी साहब जार्ज फ्रेई उन पर मुग्ध थे। प्रसन्न होकर साहब ने फूलों के अभाव में उनको समोसों की माला पहना दी। २९ अक्टूबर, सन् १९५१ को वे कोक्तंग की ऊंची बर्फीली ढलाव से फिसल पड़े। चेष्टा करने पर भी तेनसिंह उनको न बचा सके।

संक्षेपण का अंतिम रूप—

शीर्षक—तेनसिंह का साहस

तेनसिंह के साहस और वीरता पर मुग्ध होकर फ्रांसीसी साहब जार्ज फ्रेई ने भावावेश में उन्हें समोसों की माला पहना दी। २९ अक्टूबर, १९५१ को वे कोवन्तंग की ऊँची बर्फीली ढलान से फिसल पड़े और चेष्टा करने पर भी तेनसिंह उन्हें न बचा सके।

टिप्पणी—यहां मैंने सबसे पहले मूल संदर्भ को दो-तीन बार पढ़ा और मूल विषय को समझकर आवश्यक बातों अथवा पंक्तियों को रेखांकित किया। इसके बाद मूल में प्रयुक्त शब्दों को गिना। देखा कि लगभग २०० शब्दों का प्रयोग हुआ है। संक्षेपण को तिहाई रूप देने के लिए मैंने रेखांकित पंक्तियों के सहारे उसके आधार-बिन्दु तैयार कर लिए। फिर एक प्रारूप तैयार किया। इसे फिर पढ़ा। फिर आवश्यक शब्दों को छांटकर और वाक्य-रचना को व्यवस्थित करते हुए संक्षेपण का अंतिम रूप स्थिर कर लिया और उसे शुद्ध रूप में लिख दिया।

यह काम उत्तर-पुस्तिका की बायीं ओर कागज पर होना चाहिये। अन्त में मूल विषय को लक्ष्य करने वाले शब्दों के आधार पर एक शीर्षक चुन लिया। फिर प्रयुक्त शब्दों की संख्या गिन ली। इस प्रकार मूल अवतरण का संक्षेपण तैयार हो गया। इसके पाठ में स्पष्टता, सरलता और क्रमबद्धता होने से संक्षेपण सन्तोषजनक है।

२. वर्णनात्मक शैली

ऋतुराज बसन्त के आगमन से ही शीत का भयंकर प्रकोप भाग गया। पतझड़ में पश्चिमी-पवन ने जीर्ण-शीर्ण पत्रों को गिराकर गली-गली, उपवन-उपवन को स्वच्छ और निर्मल बना दिया। वृक्षों और लताओं के अंग में नूतन

पत्ती के प्रस्फुटन से यौवन की मादकता छा गयी। कनेर, करवीर, मंदार, पटाल इत्यादि पुष्पों की सुगन्धि दिग्दिगन्त में अपनी मादकता का संचार करने लगी। न शीत की कठोरता, न ग्रीष्म का ताप। समशीतोष्ण वातावरण में प्रत्येक प्राणी की नस-नस में उत्फुल्लता और उमंग की लहरें उठ रही हैं। गेहूँ की सुनहली बालियों से पवन-स्पर्श के कारण रुनभुन का संगीत फूट रहा है, पत्तों के अधरों पर सोया हुआ संगीत मुखरित हो गया है। पलाशवन अपनी अरुणिमा से फूला नहीं समाता है। ऋतुराज वसन्त के सुशासन और सुव्यवस्था की छटा हर रोज दिखलाई पड़ती है। कलियों के यौवन की अँगड़ाई भ्रमरों को आमंत्रण दे रही है। अशोक के अग्निवर्ण कोमल एवं नवीन पत्ते वायु के स्पर्श से तरंगित हो रहे हैं। शीतकाल के ठिठुरे अंगों में नयी स्फूर्ति उमड़ रही है। बसन्त के आगमन के साथ ही जैसे जीर्णता और पुरातनता का प्रभाव तिरोहित हो गया है। प्रकृति के कण-कण में नये जीवन का संचार हो गया है। आम्रमंजरियों की भीनी गन्ध और कोयल का पंचम अलाप, भ्रमरों का गुंजन और कलियों की चटक, वनों और उद्यानों के अंगों में शोभा का संचार—सब ऐसा लगता है जैसे जीवन में सुख ही सत्य है, आनन्द के एक क्षण का मूल्य पूरे जीवन को अर्पित करके भी नहीं चुकाया जा सकता है। प्रकृति ने बसन्त के आगमन पर अपने रूप को इतना सँवारा है, अंग-अंग को सजाया और रचाया है कि उसकी शोभा का वर्णन भी व्यर्थ है, उसकी उपमा नहीं दी जा सकती। [शब्द : ३०० लगभग]

संक्षेपण

बसन्त ऋतु की शोभा

बसन्त ऋतु के आते ही शीत की कठोरता और गीष्म का ताप जाता रहा। पश्चिम की शीतल वायु से गली-कूँचे साफ-सुथरे हो गये। वृक्षों और लताओं में नए पत्ते और रंग-बिरंगे फूल निकल आये, उनकी सुगन्धि से दिशाएँ गमक उठीं। सुनहली बालियों से युक्त गेहूँ के पौधे खेतों में हवा में झूमने लगे। प्राणियों की नस-नस में उमंग की नयी चेतना छा गयी। आम की मंजरियों से मीठी सुगन्ध आने लगी; कोयल कूकने लगी, फूलों पर भौंरे मँडराने लगे और कलियां खिलने लगीं। प्रकृति में सर्वत्र नव-जीवन का संचार हो उठा।

[शब्द-संख्या : ९६]

टिप्पणी—ऊपर मूल संदर्भ में बसन्तकालीन प्रकृति की शोभा का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन हुआ है, जिसमें साहित्यिक लालित्य भरने की चेष्टा की गयी है। संक्षेपण में मैंने सभी ललित-शब्दों और वाक्यों को हटा दिया है और काम की बातों का उल्लेख कर दिया है, सीधी-सादी भाषा में। मूल वर्त्तमानकाल में लिखा गया है, पर संक्षेपण में सारी बातें भूतकाल में लिखी गयी हैं। यह स्मरण रखना चाहिये कि संक्षेपण की वाक्य-रचना में भूतकाल का प्रयोग करना चाहिये।

३. विचारात्मक शैली

अनन्त रूपों में प्रकृति हमारे सामने आती है—कहीं मधुर, सुसज्जित या सुन्दर रूप में; कहीं रूखे, बेडौल या कर्कश रूप में; कहीं भव्य, विशाल या विचित्र रूप में; कहीं उग्रकराल या भयंकर रूप में। **सच्चे कवि का हृदय उसके उन सब रूपों में लीन होता है** क्योंकि उसके अनुराग का कारण अपना खास सुख-भोग नहीं, बल्कि चिर-साहचर्य द्वारा प्रतिष्ठित वासना है। **जो केवल प्रफुल्ल-प्रसून-प्रसाद के** सौरभ-संचार, **मकरन्द-लोलुप-मधुर-गुंजार; कोकिल कूजित निकुंज और शीतल सुख-स्पर्श समीर इत्यादि की ही चर्चा किया करते हैं, वे विषयी या भोग-लिप्सु हैं।** इस प्रकार **जो केवल** मुक्ताभास-हिमविन्दु-मंडित मरकताभ-शाद्वल-जाल, अत्यन्त विशाल गिरिशिखर से गिरते हुए जल-प्रपात के गम्भीर गति से उठी हुई सीकर-नीहारिका के बीच **विविध-वर्ण स्फुरण का विशालता, भव्यता और विचित्रता में हो अपने हृदय के लिए कुछ पाते हैं, वे तमाशबीन हैं**, सच्चे भावुक या सहृदय नहीं। **प्रकृति के** साधारण, असाधारण **सब प्रकार के रूपों को रखने वाले वर्णन हमें वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति इत्यादि संस्कृत के प्राचीन कवियों में मिलते हैं।** पिछले खेवे के कवियों ने मुक्तक-रचना में तो अधिकतर प्राकृतिक वस्तुओं का अलग-अलग उल्लेख-मात्र उद्दीपन की दृष्टि से किया है। **प्रबन्ध रचना में जो थोड़ा-बहुत संश्लिष्ट चित्रण किया है वह प्रकृति की विशेष रूप-विभूति को लेकर ही।**

[शब्द : ११६]

संक्षेपण

कवि और प्रकृति

प्रकृति के दो रूप हैं; एक सुन्दर, दूसरा बेडौल। सच्चे कवि का हृदय

दोनों में रमता है। किन्तु, जो केवल प्रकृति के बाहरी सौन्दर्य का चयन अथवा उसके रहस्यमयता का उद्‌घाटन करता रह गया, वह कवि नहीं है। प्रकृति के सच्चे रूपों के चित्रण संस्कृत के प्राचीन कवियों में मिलते हैं। प्रबन्ध-काव्यों में उसका संश्लिष्ट वर्णन हुआ है। [शब्द : ५८]

टिप्पणी—मूल संदर्भ वर्त्तमानकाल में लिखा है; संक्षेपण भी इसी काल में लिखा गया है, क्योंकि लेखक ने सार्वभौम सत्य की ओर हमारा ध्यान खींचा है। जीवन का चिरन्तन सत्य वर्त्तमानकाल में ही लिखा जाना चाहिये।

४. संवाद-शैली

एक दिन मेम-डाक्टर वेला से रूखे स्वर से पूछ बैठी—"तू कहाँ जायेगी ? **जाती क्यों नहीं ?** दूध और केले पर कहाँ तक पड़ी रहेगी ?"

"कहां जाऊँ ?"

"मैं क्या जानूँ, कहां जायेगी !"

"मेरा तो इस दुनिया में कोई अपना नहीं है !"

"तो इसके लिए मैं जिम्मेवार हूँ ? अस्पताल तो कोई यतीमखाना या आश्रम नहीं है। अगर तू खुद यहां से न निकलेगी, **तो मैं आज शाम को धक्के देकर निकलवा दूँगी।"**

"क्यों मैंने क्या कसूर………"

"कसूर का सवाल नहीं है। मुझे इस 'बेड' पर दूसरे मरीज को जगह देनी है। आज ही वह आती होगी। तू तो अब बिलकुल चंगी हो गयी।"

"तो आप अपने यहाँ मुझे अपनी नौकरानी बनाकर रख लें। मैं झाड़ू-बुहारू करूँगी; बरतन साफ करूँगी। मेरे लिए एक जून सूखी रोटी काफी होगी।"

"माफ करो, मैं बाज आयी !"—मेम साहबा ने जरा मुस्कराकर कहा—"तुझे अपने घर पर ले जाकर रखूँ और मेरी चौखट पर रँगीलों का फैन्सी मेला हो ! ना, **मुझे कबूल नहीं !"**

"तब और किस शरीफ के घर में……………"

"क्या टें-टें करती है ? **मैं दवा देती हूं, रोजी नहीं देती।"**

"अस्पताल में दाई का काम नहीं मिल सकता ?"

"बिना तनख्वाह के ?"

"जो कुछ आप दें !"

"तू तो सिर हो रही है !"—**मेम साहबा झल्ला उठीं—"यहां जगह नहीं है। तेरे लिए तो बाजार खुला है !** वहां तो खासी आमदनी होगी !"—

—राजा राधिकारमण : 'राम रहीम' [शब्द : २१८]

प्रारूप

एक दिन अस्पताल की मेम साहिबा ने बेला को अस्पताल से चले जाने को कहा, क्योंकि तब वह भली–चंगी हो चुकी थी। लेकिन दुनिया में उसका अपना कोई न था। मेम ने जब शाम को धक्के दे कर निकाल देने की धमकी दी तो बेला ने नौकरानी बना कर रख लेने का आग्रह किया। लेकिन यह उसे स्वीकार न था। बेला ने जब अस्पताल में दाई का काम मांगा तब मेम साहिबा झल्ला कर बोलीं कि अस्पताल में जगह नहीं थी; बाजार में उसकी खपत आसानी से हो सकती थी।

संक्षेपण

मेम ने बेला को निकाल देने की धमकी दी

बेला जब भली–चंगी हुई तब एक दिन मेम साहिबा ने उसे अस्पताल से चले जाने को कहा। लेकिन उसका तो दुनिया में अपना कोई न था। मेम ने जब शाम को धक्के देकर निकाल देने की धमकी दी तो बेला ने नौकरानी बनने या अस्पताल में दाई का काम करने की इच्छा प्रकट की। इस पर मेम ने झल्लाकर कहा कि उसके लिये बाजार छोड़ दूसरी जगह नहीं हो सकती।

[शब्द : ७१]

टिप्पणी—संवाद–शैली में लिखे संदर्भ का संक्षेपण भूतकाल और तृतीय पुरुप में होना चाहिये। ऊपर मैंने वर्त्तमानकाल में लिखे संवादों को भूतकाल और तृतीय पुरुष में बदल दिया है। साथ ही, ऐसे अवसर पर परोक्ष कथन (Indirect narration) में वाक्यों का गठन होना चाहिये। यहां मुख्य बातें रख ली गयी हैं और अनावश्यक बातें छोड़ दी गयी हैं।

५. पत्र-शैली

सेवा में,

श्री सम्पादक, आर्यावर्त;

पटना—१

गया,

१८—१०—'५६

प्रिय महोदय,

यह पत्र प्रकाशनार्थ भेज रहा हूँ। आशा है, आप इसे अपने पत्र में स्थान देंगे और इस पर स्वयं भी विचार करेंगे।

हर साल की तरह इस वर्ष भी विजयादशमी का पावन पर्व, देश के कोने-कोने में, बड़ी धूमधाम से मनाया गया। पत्रकारों, नेताओं और लेखकों ने पत्रों, मंचों और रेडियो के माध्यम से इसके उच्चतम आदर्शों और अमर सन्देशों का परिचय सर्वसाधारण को दिया। जहां-तहां संगीत, नृत्य और नाट्य के बड़े-बड़े आयोजन हुए। बूढ़े, बच्चे और जवान, सबने रंग-बिरंगे परिधानों में, दिल खोलकर इस राष्ट्रीय त्यौहार का स्वागत किया। वास्तव में, यह हमारे लिए बड़े ही गौरव की बात है। लेकिन खेद तब होता है जब कुछ गैर-जिम्मेवार लोग विजयोत्सव के नाम पर कुछ भद्दे प्रदर्शन करते हैं, जिनसे देश की राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक एकता को धक्का लगने की आशंका होती है।

देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में दशहरे का त्यौहार विभिन्न रूपों में मनाया जाता है। हिन्दी प्रदेशों में रावण पर राम की विजय का प्रतीक मानकर विजयोत्सव मनाया जाता है; बंगाल में मां दुर्गा की पूजा होती है और दक्षिण में मां सरस्वती की अर्चना। इन सब में मानव-मन की उदात्त भावनाओं को जगाने और आसुरी वृत्तियों को त्यागने की सामान्य प्रवृत्ति मुख्य रूप से लक्षित है। दक्षिण वालों ने मां सरस्वती की पूजा में देवासुर-संग्राम की कल्पना नहीं की। अतः दशहरा हमारे लिए आसुरी वृत्तियों पर देवत्व की विजय का संदेशवाहक है। इस संदेश की अभिव्यक्ति के लिए हम प्रतिवर्ष रामायण के आधार पर रामलीलाएं करते हैं। यहां तक तो ठीक है। लेकिन आपत्ति की बात तब होती है जब हम सार्वजनिक स्थानों पर

रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद के विशाल पुतले खुलेआम जलाने का आयोजन करते हैं। मैं समझता हूँ कि देश की सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकता के हित में ऐसे भद्दे नाट्य-प्रदर्शन अनुचित और निरर्थक हैं। इन्हें रोका जाय।

आपका,
घनश्याम दास।
[शब्द : ३०७]

संक्षेपण

पुतले जलाने की प्रथा रोकी जाय

१८ अक्टूबर, '५६ को गया के श्री घनश्यामदास ने 'आर्यावर्त' के संपादक के नाम इस आशय का एक पत्र लिखा कि विजयादशमी का राष्ट्रीय त्यौहार सारे देश में धूमधाम से मनाया जाता है, और जिसमें छोटे-बड़े सभी दिल खोल कर भाग लेते हैं, उसी के नाम पर कुछ गैर-जिम्मेवार लोग रावण, मेघनाद और कुंभकर्ण के पुतले खुलेआम जलाते हैं। देश की एकता के हित में यह अनुचित है। यद्यपि देश के विभिन्न प्रदेशों में विजयोत्सव के भिन्न-भिन्न रूप हैं तथापि ये सभी हृदय की उन्नत भावनाओं को जगाते हैं, संघर्ष को नहीं। इसलिए पुतले जलाने की प्रथा रोकी जाय।

[शब्द-संख्या : १०२]

अभ्यास

(१)

इसके बाद का काल खण्ड इस देश के इतिहास का सबसे अधिक प्रकाशित अध्याय है। इस अध्याय को लोग आपके नाम से याद करेंगे—नेहरू युग। इस देश के इतिहास में इतना विशाल दृष्टिकोण, इतना गहन इतिहास-ज्ञान, इतनी समझ, युग बोध और इतनी करुणा लेकर शासन करने वाला कोई शासक आज तक दिल्ली के मंच पर अवतरित नहीं हुआ—भविष्य में होगा इसका कोई विश्वास नहीं। आपके इस 'राजयोग' पर बहुत कुछ कहा जायेगा, लिखा जायेगा।

पर इस बीच मैं अपना वह नेहरू बराबर खोजता जा रहा हूं जिसे जेलों ने गढ़ा था, अभावों ने जिस पर चमक चढ़ायी थी, जिसे दोआब के किसानों ने वाणी दी थी और जिसे नियति ने एक अपराजेय और हठी अन्तःशक्ति दी थी। जो असंभवों का समन्वय था और इसीलिए अपने युग की सब से सन्तप्त आत्मा का पहरेदार था।

आपकी विरासत बांट दी गयी है। गंगा आपकी अस्थियाँ महासागर में ले गई, इतिहास ने आपके प्रकाशित अंग अपने साथ जोड़ लिये। धरती पर किसानों की धरती में आप मिल गये; इस देश की श्रम करती जनता ने आपकी विरासत संभाल ली। आपके उत्तराधिकारी ने आपका भारी राजदण्ड अपने कन्धों पर उठा लिया और भारी मन से सभी आगे बढ़ गए।

जितना बांटा जा सकता था, बाँट दिया गया। जिसे जो मिलना था, मिल गया। लहरें आगे चलीं, इतिहास का एक पन्ना उलट दिया गया।

किन्तु एक विरासत बची रह गई है। आपकी सन्तप्त और बन्धनों से जूझती आत्मा की विरासत इस देश की विशाल जनता के पास बिना किसी घोषणा के चली गई है। मनुष्य के भीतर देवता का यह अंश उसे निरन्तर सत्य के लिए लड़ने के लिए प्रेरित करेगा, निराशा के बीच जीवित रखेगा।

(२)

खलील जिब्रान ने कहीं लिखा है कि—'एक आदमी के स्वप्नों के पंख दूसरे के काम नहीं आते।' पर आपके दिए हुए सपनों के पंख तो इस पूरे देश के लोगों में काम आये। जमीन पर जिनको खड़े होने का अधिकार नहीं था, उन्हें गहन ऊंचाइयों में जो पंख पिछले पचास वर्षों तक ले जाते रहे, वे उनके अपने तो थे नहीं। वे पंख आपके थे, आपके सपनों के थे। फिर मैं खलील जिब्रान की बात कैसे मान लूं? आज आपके माया-संवरण करते ही हमें लगता है कि जैसे हर कन्धे के शक्तिशाली पंख अदृश्य हो गये हैं, जिनके बल पर असम्भव के बीच उड़ाने भरी जाती थीं। हम ठोस धरती पर खड़े होने का प्रयत्न कर रहे हैं, हम अभी यही बात मन में दृढ़तापूर्वक बैठा नहीं पाए हैं कि हमें बिना जवाहरलाल के देश में रहना है। लेनिन ने टालसटाय के सम्बन्ध में लिखा था कि वे जब लिखते थे तो विश्व के सभी लेखकों की ओर से लिखते थे। वैसे ही आप जब जीवित थे और राष्ट्र के उत्थान के कार्य में लगे थे तो लगता था कि आप स्वयं ही पूरे देश के लिए कार्य करते थे। अब आपके न रहने पर किस तरह कार्य किया जाये, हमारी समझ में अभी तक नहीं आया है। जब तक आप जीवित थे आप पद, दल, वाद, उद्देश्य, आदर्श सब में बड़े थे। इन सब में व्याप्त रहकर भी "पुरुष-सूक्त" के पुरुष की तरह आप हर एक से दस अंगुल अधिक थे।

(३)

छब्बीस मई की रात को लगभग दो बजे पत्नि ने घबरा कर मुझे जगाया। उठने पर उन्होंने कहा कि अभी-अभी एक बहुत बड़ा तारा टूटा है, जाने क्या होने वाला है? मेरा ध्यान पता नहीं क्यों आपकी ओर चला गया। ध्यान जाने का कोई कारण नहीं था। दो दिन पहले ही आपने कहा था कि आप इतनी जल्दी जा नहीं रहे हैं। फिर भी मैंने स्वस्ति वाचन किया। पाँच ऋषि, पांच फल, पाँच नदियां, पांच पर्वत—जितना कुछ भी याद आया स्मरण करता बैठा रहा।

वह तारा व्यर्थ नहीं टूटा था। दूसरे दिन आप चले ही गए। मेरे पढ़ने के कमरे से कील से लटकती आपकी बड़ी सी तस्वीर मेरे सामने ही गिरी

और चूर-चूर हो गयी । आपके माथे पर और हड्डी पर गहरी खरोंच पड़ गयी। कितनी देर तक चित्र को सहलाता बैठा रहा, जैसे वह चित्र नहीं, आपका निर्जीव शरीर हो। पितामह, पिता सब मेरे जन्म के साथ ही चले गए थे। किसी की मृत देह के पास कभी बैठा नहीं। उस दिन आपके खरोंच से भरे चित्र पर मेरी कई पीढ़ियों का घुमड़ता दर्द उमड़ पड़ा।

तभी मन में निश्चय जागा कि मैं आपको पत्र लिखूं। जब आप इस धरती पर थे, तब पत्र लिखने में जो थोड़ा स्वार्थ था, वह अब रहा नहीं, इसलिए पत्र लिखने का सुख और बढ़ गया। पत्र लिखना अपने में एक पूर्ण सुख है। उत्तर न मिलने से वह पूर्णता किसी भी प्रकार खण्डित नहीं होती। आपके जीवित रहते यह बात मेरी समझ में शायद कभी नहीं आती। अब आप नहीं हैं तो यह बात बहुत साफ समझ में आ रही है।

(४)

मैं आखिरी फैसले के लिए पुनः धूल झाड़कर उठा और तुम्हारे साथ हो लिया। तुमने मुझे बताया कि तुम इंग्लैण्ड से घर लौटते हुए रास्ता भूल गए और शमशान की ओर निकल आये। तुमसे मैंने कहा कि तुम घर लौट जाओ, पर तुम अपना मंत्र जगाते रहे। धीरे-धीरे पूरा श्यमशान जाग गया और चारों ओर जीवित लोगों की चहल-पहल गूँज गयी। मुझे विश्वास हो गया कि मुझे तुम एक दिन राजधानी अवश्य ले चलोगे। मैंने तुमसे एक दिन पूछा भी था, पर तुम तब जेल जाने के लिए उतावले हो रहे थे। धनुष तो मेरा कभी का टूट चुका था। तब तुम्हारी याद में निहत्था जूझता रहा। एक बार तुम आये तो तुम्हारी आंखें भरी हुई थीं। पूछने पर तुमने कहा कि तुम्हारे पिता का देहान्त हो गया। दूसरी बार तुम आए तो तुमने बताया कि तुम्हारी पत्नी का देहान्त हो गया, फिर तुम्हारी माँ भी नहीं रही। तुम बिल्कुल उदास लगते थे, टूटे हुए। मुझे तुम पर बड़ा मोह हो आया। बिना माँ-बाप का लड़का, स्त्री भी जिसकी नहीं रही। एक दिन घर का रास्ता भूलकर आया तो यहीं का हो गया। यह मुझे छोड़ दे, तो छोड़ दें, पर मैं इसे नहीं छोड़ूँगा। इस बार जब वह जेल गया तो मैं एकदम बिगड़ गया। तोड़-फोड़ कर डाली। अंग्रेजों को बहुत गुस्सा आया, उन्होंने घोर दमन किया, पर इससे क्या फर्क पड़ता है। इस बार काफी दिन पर तुम लौटे। आते ही तुमने मेरे घावों पर

हाथ फेरा और तुम रोने लगे। मुझे सारा दुख भूल गया। मैं फिर उठ खड़ा हो गया। मैंने कहा, जल्दी बोलो, तुम अब किधर जाने को कहते हो? तुम बहुत दुःखी थी। मेरे शरीर पर एक वस्त्र नहीं था, पेट में अन्न नहीं था, पर मैं कोई शिकायत तो नहीं कर रहा था। तुम क्यों दुखी होते थे? मैं तो लड़ने को हर शर्त पर तैयार था। फिर तुम जल्दी ही आने का वायदा करके चलने लगे, तो मैंने पूछा कि कहाँ जाओगे? तुमने फीकी मुस्कराहट के साथ कहा—इस बार जेल नहीं, राजधानी जा रहा हूं। मैं कुछ कहूं, तब तक तुम जा चुके थे।

(५)

इसकी सबसे बड़ी चोट लगी। महात्माजी साम्प्रदायिक घृणा की बलि हो गये। पता नहीं अभी कितना मूल्य चाहती है यह चेतना, आपसे? पता नहीं कितना देने के बाद शान्ति मिलेगी इस जीवन में? शायद यह पूरा एक जन्म इसके लिए काफी न हो। शायद हो भी, पर कौन जानता है?

मैंने उस दिन आपकी आवाज सुनी थी। जैसे हजारों मील दूर से कोई आवाज आ रही हो। एक सन्तप्त और सत्य के लिए जूझती आत्मा की आवाज कितने ही आवर्तों में घूमती उन्नीस सौ सैंतालीस तक चली आ रही थी। कभी यह वेदों के ऋषियों की आवाज थी, कभी गौतम बुद्ध की, कभी अशोक की, कभी गांधी की—उस दिन आपकी आवाज थी—याद रखिए उन्होंने हमें जो रास्ता दिखाया था वह लड़ाई का था, हिमालय की चोटी पर चुपचाप बैठने वाले महात्मा का नहीं था। वे हमेशा अच्छे कामों के लिए लड़ाई लड़ने वाले थे। अब आपके कंधे पर महात्माजी का अधूरा काम भी आ पड़ा था। आपने आध्यात्मिक उत्तराधिकारी की तरह विशाल संगम के बीच नाव पर से उनकी अस्थियां उस इतिहास की प्रतीक धारा में प्रवाहित कीं। नाव पर आप बैठे थे, घुटने के बल पतवार थामे, भरी आंखों से नीचे देखते हुए। इसी इतिहास-धारा में एक दिन आपकी सन्तप्त अस्थियों को भी शान्ति पानी थी पर अभी तो बहुत चलना था, बहुत काम करने थे। आगे भयंकर समस्याएं थीं और आवर्तों से भरी मझधार। नाव पर आप अकेले छूट गए थे। लेकिन भीतर की आग और भी जोर से जलने लगी थी और आंखों से निकलते आँसू पोंछकर आपने फिर चुनौती स्वीकार ली।

(६)

"जीवेम शरदः शतम्" को बाबू गुलाबरायजी भारतीय 'एषणा-चतुष्टय' कहा करते थे। एषणात्रय का वर्णन तो शास्त्रों में भरा पड़ा है, किन्तु शतायु होने की इच्छा ऋचा सम्मत होने के कारण तीनों एषणाओं के मूल में विद्यमान है, ऐसी उनकी धारणा बन गई थी। अपने जन्म-दिन के अवसर पर वह प्रायः इस बात की चर्चा करते थे कि ईश्वर की कृपा से मेरी पुत्रेषणा पूर्ण हुई, मेरे पुत्र योग्य होने के साथ आज्ञाकारी और सेवा-परायण हैं। वैश्य कुल में जन्म होने से मैं यह कल्पना कर लेता हूं कि वित्त से मेरा सम्बन्ध है और वित्तैषणा पूरी न होने पर भी मैं सर्वथा वित्तहीन नहीं हूं। वैश्य का बैंक में हिसाब होना ही काफी है, बैलेंस होना वित्त की अनिवार्य शर्त मैं नहीं मानता। लोकेषणा की चर्चा बाबूजी बड़े विनोद के साथ किया करते थे। वह प्रायः कहा करते थे कि यश की सीमा नहीं, मापदंड नहीं, उसके शाश्वत या नित्य होने का बोध केवल काल देवता को है; फिर लोकेषणा की चिन्ता में स्वास्थ्य खराब क्यों किया जाय। हां, यशोपार्जन के प्रयत्नों के कभी-कभी अपयश या कटुतिक्त आलोचना का विषपान करने का अभ्यास अवश्य कर लिया है। अतः 'शतायु' होने की एषणा को मैं समस्त एषणाओं से बड़ा मानता हूं। स्वाप्रायः अस्वस्थ्य रहते और शतायुष्य की इच्छा स्थ्य के प्रति सजग रहते हुए भी बाबूजी रखते हुए भी ७६ वर्ष की आयु में १३ अप्रेल, '६३ को वैशाखी पर्व के दिन अपराह्न में ५ बजे उनकी आत्मा इस नश्वर शरीर को छोड़कर ब्रह्म में लीन हो गई।

(७)

जब मैं रूस घूम रहा था, एक दिन ऐसा हुआ कि डिनर की मेज पर कुक्कुट महाराज छुरी और कांटे से मेरे बस में नहीं आये। निदान, मैंने हिचक छोड़कर छुरी और कांटे के स्थान पर अपने सु-अभ्यस्त कर-कमल को बेखटके नियुक्त कर दिया। इस पर मेरी दुभाषिया मरियम ने कहा, "दिनकरजी, आपके प्रधान मन्त्री के मेज-आचार (टेबुल-मैनर्स) बहुत अच्छे हैं। मगर, यहां रूस में एक मजाक पहुंचा है, वह मैं आपको सुना देती हूं। हुआ यह कि एक रोज पण्डितजी इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री के यहां खाना खाने गये तो मुर्गी का गोश्त खाने में छुरी और कांटे से उन्हें थोड़ी दिक्कत होने लगी। इस पर

पण्डितजी ने मजाक में कहा, "मिस्टर मैकमिलन ! छुरी और कांटे से चिकन खाना उतना ही बेढ़ब काम है जैसे दुभाषियों के जरिये कोई किसी से प्रेम का प्रस्ताव करे।"

पण्डितजी मजाक बहुत कम करते थे। मगर जब भी कोई मजाक करते, वह नफीस और महीन होता था। फूहड़ मजाक उन्हें पसन्द नहीं आते थे। एक बार लोकसभा में स्वर्गीया सरोजिनी नायडू के पुत्र स्वर्गीय डाक्टर जय सूर्य ने रामपुर टेलिग्राम को लेकर कोई बेहूदा सा मजाक कर दिया, जिस पर पण्डितजी बहुत ही नाराज होगए थे। एक बार बहन तारकेश्वरी ने पाकिस्तान के प्रसंग में कोई फूहड़ सी बात कहदी। वह बात पण्डितजी को बहुत बुरी लगी और खुली सभा में उन्होंने उसकी भर्त्सना की थी।

(८)

मोर्चे पर जाने को उत्सुक वीर नवयुवक फूलसिंह की वीरता भरी कहानी सुनने के बाद जब मैंने उससे पुनः मोर्चे पर जाने के सम्बन्ध में प्रश्न किया तब २० वर्षीय किशोर ने तपाक से उत्तर दिया—बाबूजी ! युद्ध करना तो हमारे लिए एक बच्चों का सा खेल बन चुका है। राइफल के घोड़े को दबाने में तो अनुपम आनन्द आता है। वहां भय का तो नाम ही नहीं रहता। मरने और मारने की होड़-सी रहती है। मैं तो इसी क्षण मोर्चे पर जाकर पुनः उन चपटी नाक वाले बौने चीनियों से दो-दो हाथ करने को उत्सुक हूं।

भारतीय सैनिकों की वीरता की प्रशंसा करते हुए जवान ने गम्भीर होकर कहा—"हम जवान शीश हथेली पर रण-क्षेत्र में कूदते हैं और मृत्यु को तो दुलहन समझते हैं।" उसने कहा—"यदि चीनी पीछे हटना शुरू न कर देते तो हम उन्हें इस बार हिमालय के उस पार खदेड़कर ही दम लेते क्योंकि हम भी पूरी तरह से तैयार हो चुके थे।"

(९)

सन् १९५४ से लेकर १९६४ तक के दस वर्ष की लम्बी अवधि में प्रायः अपने पतिदेव (श्री भवानीशंकरजी त्रिवेदी) के साथ और बहुधा अकेले भी मुझे पूज्य दाद्दा (राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त) के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होता रहा। इस अवधि में मैंने पाया कि यशोधरा, विष्णुप्रिया और

रत्नावली जैसे करुण काव्यों के सृष्टा कवि का अन्तर-बाह्य सर्वांग करुणा-स्नात था। इन काव्यों में दद्दा ने नारी के जिस करुणार्द्र रूप को अपनी सुकोमल तूलिका के स्पर्श से प्राणान्वित किया है वे स्वयं उस करुण पीयूस-वाहिनी के मूर्तिमन्त प्रतीक थे।

दद्दा के जो भी कोई पहुंचता, वे उसका अभाव, अभियोग बड़े मनोयोग से सुनते और सुनकर टाल नहीं देते, अपितु अपने सीमित साधनों का अधिक से अधिक उपयोग करते हुए उसकी जटिल से जटिल समस्याओं का समाधान करने का भी प्रयत्न करते थे। इस प्रसंग में एक और महापुरुष का संस्मरण अनायास ही हो आता है और वे थे महामन्न मालवीयजी। उनके चरित्र की भी सबसे बड़ी विशेषता यही थी कि उनका द्वार सदा सबके लिए खुला रहता और कोई उनके यहाँ से निराश न लौटता था।

(१०)

बाबूजी की सैद्धान्तिक समीक्षा की दो पुस्तकों का हिन्दी जगत में अच्छा सम्मान हुआ। विशेष रूप से अध्ययन-अध्यापन में उनकी ये दो कृतियां "सिद्धान्त और अध्ययन" तथा "काव्य के रूप" सभी विश्व विद्यालयों में प्रचार पा गईं। इन दोनों ग्रन्थों के प्रकाशन के बाद कई अन्य लेखकों ने इन्हीं के अनुकरण पर समीक्षा शास्त्र की पुस्तकें लिखीं। एक लेखक ने बाबूजी के ग्रन्थ से लगभग २०-२२ पृष्ठों का मैटर उद्धृत कर डाला। जब बाबूजी का ध्यान इस चोरी की ओर आकृष्ट हुआ तो बाबूजी ने मन्द मुस्कान के साथ कहा—"यह लेखक महाशय कौन है? पुरुष हैं या स्त्री? यदि स्त्री है तो क्षम्य है; यदि स्त्री वेश में पुरुष है तो भी अवध्य है और यदि सच्चे पुरुष हैं तो उनसे प्रार्थना करूंगा कि वह अगले संस्करण में क्षमायाचनापूर्वक इन पृष्ठों को अपने ग्रंथ से निकाल दें। लेखक से पत्र-व्यवहार के बाद बाबूजी ने उनके विरुद्ध कोई सक्रिय कदम नहीं उठाया। उनका कहना था कि यह साहित्यिक डकैती है और डकैतों से मोर्चा लेना बुद्धिमत्ता नहीं है। अगले संस्करण में हम ही उनका संकेत अपने ग्रन्थ में कर देंगे और अपने विषय प्रतिपादन को अधिक परिष्कृत बना कर नया रूप दे देंगे।"

(११)

त्रिपिटिकाचार्य महाविद्वान राहुलजी की हिन्दी-सेवा का मूल्यांकन करना सरल नहीं है। उन्होंने भारत के हिन्दी भाषियों के लिए लिखा, शहद की मक्खी के समान दुनियां भर से ज्ञान बटोर कर हिन्दी को दिया है। हिमाचल प्रदेश के यात्रा वृतान्त को हिन्दी गर्व से दुनियां के सामने रख सकती है। इस प्रदेश की जातियों के बारे में उन्होंने जो पते की बातें कही हैं उनको नृवंश शास्त्री पच्चीस साल बाद कहेंगे और तब मानेंगे कि इस आधुनिक जिप्सी घुमक्कड़ ने कितनी सूक्ष्मता से खोज की है और बारीकी से तथ्यों का पता लगाया है, एवं प्राचीन भारत के अनेक अज्ञात रहस्यों को किस सरलता से खोल दिया है। गंधर्वों और किन्नरों को ठीक-ठीक पहचान कर उन्होंने प्राचीन भारत के ऊपर से रहस्य का एक पर्दा हटा दिया है। यही बात उनके लोक विश्वत और प्रशंसित मध्य-एशिया के इतिहास के बारे में कही जा सकती है। यह ग्रंथ भी अनुपम ज्ञान और रत्नों का भण्डार सिद्ध होगा।

(१२)

राहुलजी एक व्यक्ति मात्र न थे। उन्होंने पीढ़ियों में कई व्यक्तियों द्वारा मिलकर किया जाने वाला कार्य अकेले किया। हिन्दी साहित्य को उन्होंने १७० के लगभग अमूल्य ग्रन्थ दिए। उन्होंने हिन्दी में पुरातत्व इतिहास को एक नवीन वैज्ञानिक शोधपूर्ण दृष्टि से प्रस्तुत किया। उनके यात्रा सम्बन्धी संस्मरण अपूर्व हैं। उनके द्वारा तिब्बत, चीन, मध्य-एशिया से लाए गए अगम्य भारतीय ग्रन्थ, पाण्डुलिपियाँ और अन्य सामग्री ही उनके अध्यवसाय की अपूर्व कहानी कह रहे हैं। पाण्डित्य, सृजन, प्रतिभा, शोध, पर्यटन एवं वैज्ञानिक अनुसन्धान के क्षेत्र में राहुलजी के कार्य एवं ग्रन्थ हमें सदा प्रेरणा देते रहेंगे।

(१३)

विधेयक को सदन में पेश करने और स्वीकृत करवाने के लिए जिम्मेदार गृहमंत्री, श्री लालबहादुर शास्त्री, की स्थिति सचमुच दयनीय थी। उन पर दोनों ही ओर से आरोप लगाए जा रहे थे और लक्षणों से यह प्रकट हो रहा था कि देश पर संकट के समय, जब राष्ट्रीय एकता की परम आवश्यकता

है, विधेयक पेश कर वह सम्भवतः एक ऐसे आन्दोलन को जन्म दे रहे हैं जो इस एकता की जड़ पर कुठाराघात कर सकता है। शुरू में तो उन्हें बोलने ही नहीं दिया गया (इसी सम्बन्ध में अध्यक्ष ने सोसलिस्ट पार्टी के श्री मणिलाल बागड़ी को एक सप्ताह के लिए और निर्दलीय सदस्य, स्वामी रामेश्वरानन्द और जनसंघ के श्री हुकमसिंह कछवाहा को विशेष सत्र के लिए सदन की सदस्यता से मुअत्तिल भी कर दिया) और वह जब बोले भी तो अपने संक्षिप्त से भाषण में उन्होंने क्षमा-याचना सी करते हुए यही कहा—विधेयक संविधान के विरुद्ध नहीं है और उससे देश की एकता भंग होने की नहीं, बल्कि मजबूत होने की ही आशा है।

(१४)

२० वर्ष की आयु में वीर फूलसिंह ने अपने दादा ठाकुर किशोरसिंह के पदचिन्हों पर चलकर चीनी दरिन्दों से जूझकर जंग की पहाड़ियों पर तिल-तिल भूमि पर, चप्पे-चप्पे पर राजपूती पौरुषता का महाकाव्य लिखा। उसके दादा किशोरसिंह ने भी भारतीय सेना में अनुपम बहादुरी के लिए अनेक तमगे प्राप्त किए हुए थे।

वीर फूलसिंह का सेना युद्ध के वीर सेनानी के रूप में जहां पिलखुवा में नागरिकों की ओर से भव्य स्वागत किया गया वहाँ प्रमुख नगर हापुड़ में हुए विराट वीर रस कवि सम्मेलन का उद्घाटन भी वीर फूलसिंह के कर-कमलों से ही कराया गया।

(१५)

भारत के स्वर्गीय प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरू अपने सहज, मधुर स्वभाव के लिए भारत में ही नहीं, संसार भर में सर्वप्रिय रहे हैं। उनके स्वर्गवास के समाचार पर श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए जापान के सभी समाचार-पत्रों ने एक-स्वर से स्वीकार किया है कि जापान में जितनी लोकप्रियता श्री नेहरू को प्राप्त थी, वह संसार के बहुत कम राजनीतिक नेताओं को मिली है। इधर स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत और जापान के सम्बन्ध काफी मधुर रहे हैं। "ताक्यो शिम्बुन" नामक जापानी समाचार-पत्र ने श्री नेहरू के स्वर्गवास

के प्रसंग में भारत और जापान के सम्बन्धों की चर्चा करते हुए अपने सम्पादकीय में लिखा है—दो बातें हैं, जिनके लिए जापान भारत का विशेष रूप से अत्यधिक आभारी है। पहली कि भारत ने सन्फ्रांसिसको की शांति-संधि पर हस्ताक्षर न कर······जापान से अलग संधि की है। और दूसरी जिन दिनों जापान युद्ध-पश्चात् के चतुर्दिक् अभावों से ग्रस्त था, भारत ने जापानी बच्चों के लिए उएनो के चिड़िया-घर को इन्दिरा नामक हथिनी उपहार में भेजी थी।

इन्दिरा नाम की यह हथिनी भारत के बच्चों की मित्रता और सद्भावना की संदेशवाहिका बनकर १९५० में जापान आयी थी। १९५७ में श्री नेहरू जापान आये तो वे उएनो में इन्दिरा हथिनी से भी मिले थे। आज भी अगर आप जापान की राजधानी तोक्यो के उएनो पार्क में जायें, तो वहां के विशाल चिड़ियाघर में इन्दिरा के बाड़े के बाहर जापानी और अंग्रेजी भाषा में जापानी बच्चों के नाम प्रधान मन्त्री नेहरू का सन्देश लिखा हुआ है और उसके साथ फ्रेम में मढ़ी एक फोटो है जिसमें श्री नेहरू इन्दिरा हथिनी को अपने हाथों से कुछ खिला रहे हैं। और पास ही खड़ी हैं श्रीमती इन्दिरा गांधी। श्री नेहरू के निधन पर जापान के टेलीविजन के सभी चेनलों पर उनके निधन-समाचार के साथ यह फोटो दिखायी गई थी और अगले दिन अनेक समाचार पत्रों ने प्रमुखता के साथ इस फोटो को छापा था।

(१६)

श्री नेहरू फिर पर्दे की ओट में चले गए। पर्दा कनात के रूप में जमीन से चार फुट की ऊंचाई तक ही था। उनका ओजपूर्ण चेहरा बाहर से दिखाई पड़ रहा था। उन्होंने चश्मा लगाया और गम्भीरतापूर्वक मत पत्र पर छपे सभी उम्मीदवारों के नामों को पढ़ा। बाहर आकर मतदान पेटी में उन्होंने अपना अमूल्य वोट डाला। दुबारा फिर उन्हें लोक सभा वाला मतदान पत्र रबर की मुहर के साथ दिया गया और वे पुनः दूसरे कोने में रखे आवरण के पीछे चले गए। लोकसभा के लिए उस क्षेत्र से कांग्रेसी उम्मीदवार और कोई नहीं, अपितु वर्तमान प्रधान मन्त्री तथा नेहरू के कर्मठ सहयोगी श्री लाल-बहादुर शास्त्री स्वयं चुनाव लड़ रहे थे। श्री नेहरू ने पुनः अभ्यार्थियों का नाम पढ़ा और वर्तमान पेटी में अपना दूसरा मत भी डाल दिया। मतदान

पेटी तब तक भर सी चुकी थी और शीघ्र ही हमें दूसरी पेटी तैयार करनी पड़ी। लगता था श्री नेहरू का वोट पाकर मतदान पेटी इस तरह तृप्त होगई कि अन्य कोई वोट स्वीकार करने से उसने साफ इन्कार कर दिया।

(१७)

कुछ वर्ष पहले हजरत निजामुद्दीन के उर्स के मौके पर भाषण करते हुए राजेन्द्र बाबू ने कहा था—"हिन्दुस्तान जैसे मुल्क में जहां पर मुतफर्रक मजहब है और मुतफर्रक जाति के लोग बसते हैं हमारे साधु सन्तों और औलिया लोगों ने, चाहे वे हिन्दू हो या मुसलमान, मिल-जुलकर रहने पर जोर दिया है और यह उन्हीं की नसीहत है, जिसके कारण हमने एक-दूसरे के साथ तफरीक न ही रखी और अब तक नहीं रखते हैं।" उन्होंने कहा—"भारत में बहुतेरे सूफी, सन्त और औलिया लोग हुए और सबने हमें यह नसीहत दी कि सबको बराबर के हक हों। यही हमारे-संविधान का एक बहुत बड़ा जुज है, जिससे हम सारी दुनियां के सामने सिर ऊंचा उठा सकते हैं।" वे जीवन-मुक्त थे।

(१८)

मेरे आश्चर्य की उस वक्त सीमा न रही, जब करीब नौ बजे मैंने देखा कि श्रीमती इन्दिरा गांधी मतदाताओं की लम्बी कतार में चुपचाप खड़ी अपनी पारी की प्रतीक्षा कर रही है। उन दिनों इन्दिराजी प्रयाग में ही थी। मैं समझता था कि वे पण्डितजी के साथ ही आयेंगी—पण्डितजी दस बजे के करीब बमरौली हवाई अड्डे पर उतरने वाले थे। लेकिन बगैर किसी पूर्व सूचना के एक साधारण मतदाता की तरह शांत, किन्तु ओजपूर्ण मुद्रा में इन्दिरा को पंक्तिबद्ध खड़े देखकर मैं श्रद्धा से नतमस्तक हो गया। इसी बीच किसी राजनीतिक दल के प्रतिनिधि ने आकर शिकायत की कि पंक्ति में खड़ा हुआ एक भद्र महिला से कांग्रेस को वोट देने की सिफारिश कर रहा है, जो कानूनी दृष्टि से एक अपराध था। उसका संकेत श्रीमती इन्दिरा गांधी की ओर था। कांग्रेस की एक वरिष्ठ सदस्या, उसकी राष्ट्रीय कार्य समिति की सदस्या और भूतपूर्व कांग्रेस अध्यक्ष से ही काँग्रेस को वोट देने की सिफारिश

की बात यद्यपि मिथ्या और दुर्भावनापूर्ण थी, फिर भी अधिष्ठाता की हैसियत से मैंने पूछ-ताछ करना आवश्यक समझा। शिकायत की सत्यता से इन्कार करते हुए श्रीमती इन्दिरा ने कहा—"मुझे सिफारिश की कोई जरूरत नहीं है। मैं इतना समझ सकती हूं कि वोट किसे देना चाहिए।" बाद में उक्त राजनीतिक दल के प्रतिनिधि महोदय को वहीं पर क्षमा याचना करनी पड़ी।

(१९)

आज जब विभिन्न देशों में प्रवासी भारतीयों को लेकर तरह तरह के राजनीतिक और आर्थिक दांव-पेच चले जा रहे हैं, तब इस प्रकार का सुनियोजित एवं प्रभावशाली कदम और भी आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण हो गया है। भारतीयों का आधुनिक प्रवास का इतिहास विभिन्न देशों की आर्थिक समृद्धि एवं राजनीतिक आकांक्षाओं के साथ उनके सम्पूर्ण एकात्म भाव का इतिहास रहा है। अफ्रीका के विभिन्न देशों में उन्होंने मूल निवासियों को उद्योग एवं व्यापार में पारंगत करने का प्रयत्न किया है। आज जब अनेक देशों में भारतीय संस्कृति को फैलाने वाले हमारे इन बन्धुओं पर संकट आया है, तब उन्हें स्वदेश से न सिर्फ राजनीतिक स्तर पर ही, अपितु जनता की ओर से भावात्मक स्तर पर भी सुदृढ़ समर्थन एवं सहयोग मिलना चाहिए और साथ ही मिलनी चाहिए एक समन्वयवादी उदात्त दृष्टि, जो भारतीय प्रवासियों एवं विभिन्न देशों के मूल निवासियों के बीच उभारे जा रहे झूठे विवादों का सच्चा और संतोषप्रद समाधान दे सके। इसमें कोई संदेह नहीं कि 'प्रवासी भवन' की योजना इस दिशा में एक-रचनात्मक योग देगी।

(२०)

एक सुना-सुनाया किस्सा और बताने को जी चाहता है, मगर पूर्व इसके कि मैं इस किस्से को दर्ज करूं, वाजिब यह है कि अपने मान्य मित्र पण्डित महावीर त्यागी से माफी मांग लूँ, क्योंकि उन्हीं का भण्डाफोड़ है। बात उस समय की है जब भुवनेश्वर कांग्रेस के बाद पण्डितजी ने त्यागी को मन्त्रिमंडल में शामिल होने का आफर दिया था। त्यागीजी का कौल था कि अब वे मिनिस्टर ऑव स्टेट बनने को कतई तैयार नहीं हैं। विचार वे तभी करेंगे जब आफर मंत्रिमण्डल की पूरी सदस्यता का होगा। इसी खटपट के कारण

त्यागीजी १९६२ में मंत्रिमण्डल में नहीं लिए गए थे। इस बार पँडितजी ने पूरे मंत्रित्व का आफर दिया तो त्यागीजी दुविधा में पड़ गए। विद्रोही का पद कम सुयश या अधिकार का पद नहीं है। इधर वर्षों से त्यागीजी पार्टी के 'डार्लिंग' रहे थे। यह सुयश खोना नहीं चाहते थे। साथ ही, मंत्रिमण्डल की सदस्यता भी उन्हें आकर्षक दिखाई दे रही थी। इसलिए आफर कई दिनों तक अधर में झूलता रहा और त्यागीजी पण्डितजी के सामने अपना दुलार छितराते रहे। इसी दौर में त्यागीजी ने पण्डितजी से एक दिन कहा, "अब इस वजारत में मजा नहीं रहा जवाहरलाल! याद हैं वे दिन जब बरेली जेल में तुम मुझे फ्रेंच पढ़ाते थे और तब मैं सही उच्चारण नहीं कर पाता, तब मुझे उल्लू, गधा, बेवकूफ, नालायक, सब कुछ कह डालते थे? बाद में जब मैं तुम्हारा मंत्रि बना तब भी तुमने मुझे नालायक और बेवकूफ कहना बन्द नहीं किया? वे मजे के दिन थे, वे मजे की बातें थीं। मगर अब तुम मुझे आप और जनाब कहकर सम्बोधन करते हो। इसलिए भीतर जोश नहीं रह गया है कि मैं तुम्हार वजीर बनूं।'

(२१)

दिल्ली के नागरिकों से विदा लेकर कुछ ही दिन बाद राजेन्द्र बाबू देशवासियों से भी सदा के लिए इतनी शीघ्र अंतिम विदा ले लेंगे, इसका सहसा अनुमान नहीं होता था। भारतीय सीमाओं पर चीनी आक्रमण के समय उन्होंने जो ऐतिहासिक भाषण दिए और उनमें और उनके स्वर में जो आवेश और वाणी में जो दर्द था, उसे देखते हुए डाक्टरों ने उनसे विश्राम करने की सलाह दी, पर उनका एक ही उत्तर था-'सारा जीवन तो देश का कार्य करते-करते बीत गया और आज जब भारत की सुरक्षा को फिर खतरा आया है, उस समय चुप होकर बैठना, यह कौनसा धर्म है? सीमाओं पर यदि हजारों जवान देश के लिए अपनी बलि दे रहे हैं तो मैं भी उसके लिए देश को तैयार करने में यदि समाप्त हो जाता हूं तो सौभाग्य होगा। पर यह असम्भव है कि मैं अपने स्वास्थ्य को लेकर चुप बैठ जाऊं?' ऐसा ही हुआ।

(२२)

समृद्धिशाली पश्चिम के पुजारियों—नकलचियों—की इस बाढ़ में डूबते

भारत को जिन महापुरुषों ने सावधानी की पहली आवाज दी वे थे स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, कवि रवीन्द्रनाथ और जिस महा-मानव ने भारत को पश्चिमी सभ्यता की बाढ़ से निकालकर भारतीय संस्कृति के मार्ग पर लगाया, वह थे गांधीजी।

ये कोई संकीर्ण-दृष्टि मानव न थे, पर वे मानते थे कि पश्चिम की सभ्यता विलास-मूलक है। विलास मनुष्य के शरीर को गुदगुदाता है और आत्मा को खोखला करता है। वह मनुष्य को सुविधा देकर सुख छीन लेता है। वह मनुष्य को दौड़ाता है, पर कहीं पहुँचाता नहीं। इसलिए भारत के लिए उचित मार्ग यही है कि वह पश्चिम के गुण अपने ढंग पर अपनाए, पर रहे भारत ही—इंगलैंड, अमेरिका बनने का प्रयत्न न करे।

(२३)

बौद्धों का शून्यवाद और मार्क्सवाद उनको एक ही सा लगा; और इसी कारण वह भारत के अन्य कम्युनिस्टों की अपेक्षा अपने को श्रेष्ठ कम्युनिस्ट मानते थे और मानते थे कि भारतीय कम्युनिस्ट साम्प्रदायिक भावना से मुक्त नहीं हो सकते, क्योंकि वे हिन्दू से कम्युनिस्ट हुए हैं। वह स्वतः जब इस भावना से मुक्त हो चुके थे तब कम्युनिष्ट हुए हैं। राहुलजी को ब्राह्मणों की बौद्धिक शक्ति पर बड़ा विश्वास था। वह मौज में कहा करते थे, यदि भारत के ब्राह्मणों ने कम्युनिज्म को कभी अपनाया तो उसको भी अपने रंग में रंग लेंगे और उसका भी अंत कर देंगे। जैसे उन्होंने बौद्ध धर्म का अन्त कर दिया।

गम्भीर और दीर्घकाल के अध्ययन और मनन के बाद बनाए हुए विचारों और आदर्शों में वह जल्दी-जल्दी परिवर्तन नहीं करते थे। कम्युनिस्ट पार्टी ने उन्हें पार्टी से निकाल दिया। क्योंकि वह संस्कृत निष्ठ हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा मानते थे। कम्युनिस्ट नेताओं को उनके बम्बई हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष पद से दिए गए भाषण से गहरा धक्का सा लगा था, परन्तु राहुलजी भी अड़े रहे और अन्त में कम्युनिस्ट पार्टी ही झुकी। उसने उन्हें पुनः अपना सदस्य बना लिया। भारत के कम्युनिस्ट पार्टी के इतिहास में यह एक अद्भुत बात मानी जाएगी।

(२४)

राजेन्द्र यादव अपनी चमत्कार वाली मुद्रा में "हैण्ड्स-अप" की भंगिमा लेकर मंच पर आए और इसी चमत्कार के कारण उनका ठोस आत्मकथा भी निष्प्रभ चला गया। कमलेश्वर दर्शन का चदरा ओढ़े, नयी कहानी की ध्वजा हाथ में लिए मंच पर आये और अपने फतवे देकर चले गए। राकेश पादरी का चोगा पहने, नयी कहानी का क्रास गले में लटकाये अपने निर्णय सुना गए कि फलां कहानी नयी है, फलां नहीं। मंच की बाजू से ग्रीन रूम का वह दृश्य उभरा, जिसमें कुछ व्यक्ति नयी कहानी का रंग-रोशन लेकर जल्दी-जल्दी 'मेकअप' कर रहे थे। कुछ व्यक्तियों की आवाजें केवल नेपथ्य की ध्वनियां बनकर रह गयीं और कुछ चेहरे विंग से भी झांकते नजर आए। और जैसा कि इस देश की हर योजना के साथ होता है, इस योजना की महत्वाकांक्षा और उसके निहित अर्थ को रचनाकारों ने या तो समझा ही नहीं या उनकी समझ इतनी वैयक्तिक रही कि योजना अपनी आकांक्षा की पूर्ति नहीं कर पायी। आत्मपरिचय आत्मप्रचार बन गए और आत्मकथा आत्मविज्ञापन। अधिकाँश लोगों ने इस मंच को या तो अपने वैयक्तिक सिद्धान्तों और दर्शनाभासी दर्पोक्तियों का केन्द्र बनाया या एक दूसरे वर्ग से बदला लेने का माध्यम। यही कारण है कि इस मंच पर आकर भी अधिकांश रचनाकारों का व्यक्तित्व उनके मुखौटों के पीछे छिपा रहा और कृतित्व भी उनका सही-सही प्रतिनिधित्व नहीं कर पाया। आत्मपरिचय और कथा की तुलना में उनकी रचनाएँ उसी स्तर की नहीं रहीं; वैचारिक और रचनात्मक धरातल पर भी उनमें कोई संगति नहीं बैठ पायी। कृतित्व के सम्बन्ध में तो शायद यह दलील दी जाये कि योजनाबद्ध तरीके से रचना नहीं हो सकती, लेकिन आत्मकथा और परिचय तो ईमानदारी से अपने आपको आंकने परखने का, आत्मालोचन का तरीका हो सकता था। लेकिन जो नहीं हुआ, उसका गम क्या ? वह नहीं है।

(२५)

महीनों पहिले चुनाव आयुक्त से, सम्भव है नेहरूजी ने वोट डालने के तौर-तरीकों पर उच्चस्तरीय वार्ता की हो, पर उस वक्त उन्हें यह स्मरण नहीं था कि वोट किस प्रकार डालना चाहिए। अतः निःसंकोच होकर उन्होंने मुझसे

पूछा, "भाई, यह तो बताओ कि वोट किस तरह डाला जायेगा ?" भारतीय गणतंत्र के प्रतीक श्री नेहरू से ऐसे प्रश्न की अपेक्षा मैं नहीं करता था। इतने बड़े पैमाने पर देश में तीन-तीन बार आम चुनाव करा देने वाले उस महान लोकतन्त्रवादी ने इस सरलता से उक्त प्रश्न पूछा कि मैं हैरत में पड़ गया। मैं शीघ्र ही सँभल गया और फिर विस्तारपूर्वक उन्हें बताया कि मतदान किस प्रकार किया जाना चाहिए। श्री नेहरू को मैं उस मेज के पास ले गया जहां मतदान पेटी रखी थी। वहां उनसे लोकसभा वाला मत-पत्र ले लिया गया और विधानसभा के मत-पत्रों को अंकित करने के लिए रबर की एक मुहर दे दी गई। शुरू में श्री नेहरू ने एक मत-पत्र वापस करने में आपत्ति प्रकट की, पर जब उन्हें बताया गया कि दोनों मत-पत्रों को क्रम से चिन्हित करने की ही विधि निश्चित की गयी है, तो वे सहर्ष तैयार हो गये।

(२६)

सैनिटरी इन्सपेक्टर को कई तरह के काम करने पड़ते हैं। वे भी जेब में "लैक्टोमीटर" डालकर घूमते हुए राजहंसों की तरह नीर-क्षीर विवेक किया करते थे और नीर-क्षीर में भेद करने वाले ग्वालों के मोती चुग लेते थे। छूत की बिमारियों के वे इतने बड़े विशेषज्ञ थे कि किसी के मरने की खबर पढ़कर वे महज अखबार सूंघकर बता देते थे कि मौत "कालरा" से हुई थी या "गैस्ट्रोइनट्राइटिस" से। वास्तव में उनका जवाब ज्यादातर एकसा होता था। इस देश में जैसे भुखमरी से किसी की मौत नहीं होती, वैसे ही छूत की बिमारियों से भी कोई नहीं मरता। लोग यों ही मर जाते हैं और झूठ-मूठ बेचारी बिमारियों का नाम लगा देते हैं। उनके जवाब का कुछ ऐसा ही मतलब होता था। वेश्याओं और साधुओं की तरह नौकरी पेशा करने वालों की उमर के बारे में भी कुछ कहा नहीं जा सकता; पर इन्सपेक्टर साहब को खुद अपनी उमर के बारे में कुछ कहने में कोई संकोच न था। उनकी असली उमर बासठ साल थी, कागज पर उनसठ साल थी और देखने में लगभग पचास साल थी। अपनी उमर के बारे में वे ऐसी बेतकल्लुफी से बातें करते थे, जैसे वह मौसम हो। वे सीधे-सादे परोपकारी किस्म के घरेलू आदमी थे, और अपनी ईमानदारी से ज्यादा दूसरों के सुभीते की चिन्ता करते थे। किसी को थाना न जाना

पड़े, इसलिए वे खुद ही उसका चालान कर लेते थे, किसी को कचहरी तक न दौड़ना पड़े, इसलिए खुद ही उस पर जुर्माना कर देते थे। और किसी को लिखा-पढ़ी के झंझट में न पड़ना पड़े, इसलिए रसीद वसीद का पचड़ा नहीं पालते थे। लिखने पढ़ने के काम और फाइलों से उन्हें हार्दिक घृणा थी और संक्षेप में, वे लालफीताशाही के दुश्मन थे।

(२७)

जब भाषावार प्रान्तों का संगठन हो रहा था, हम बिहारी इस बात से बहुत नाराज थे कि बंगाल के लोग बिहार की काफी रकबा अपने प्रान्तों में मिला लेना चाहते हैं। एक दिन कोई पचास बिहारियों का एक जत्था पंडितजी से मिलने गया। उस जत्थे का एक सदस्य मैं भी था। बिहारियों ने पण्डितजी के आगे अपना रोना रोया, मिन्नतें की, कुछ गुस्से का भी इजहार किया। मगर पण्डितजी नहीं पसीजे। उन्होंने केवल यह कहा, "आपका मुकद्दमा अच्छा है। मगर, अभी शोर मत मचाइए। सारे देश को भूत लग गया है। पहले इस भूत को मुझे भगाने दीजिए।" वातावरण जरा गम्भीर हो गया था, इसलिए मैंने मजाक किया, "पण्डितजी भूत तो भागेगा ही। हम बिहारी तो सिर्फ भागते भूत की लंगोटी चाहते हैं।" मजाक मेरा सटीक था, क्योंकि हम लोग जिस भूखण्ड को बचाना चाहते थे, वह लंगोटी की तरह ही लम्बा अधिक, चौड़ा बहुत कम था। सभी लोग मेरे मजाक से ठठाकर हंस पड़े। मगर पण्डितजी के मुख पर हंसी नहीं आयी। मुझे तुरन्त भासित हुआ कि लंगोटीविहीन भूत के नंगेपन की तस्वीर उन्हें अच्छी नहीं लगी है। पण्डितजी की पूरी सांस्कृतिक चेतना हर समय जागरूक रहती थी और भूल से भी वे कुरूप, मजाक पर नहीं हंसते थे। उनकी रुचि इतनी सुरम्य थी, उनका संस्कार इतना महीन था।

उनकी रुचि बिल्कुल क्लासिक थी। सस्तापन न तो उन्हें चित्रों में पसन्द था, न संगीत, नृत्य और काव्य में। लेखन और मंच-अभिनय को छोड़कर कला के किसी भी क्षेत्र के आचार्य नहीं थे, किन्तु कला के किसी भी क्षेत्र में वे धोखा नहीं खा सकते थे। मनुष्य के व्यक्तित्व की अतल गहराई में कहीं मूल छन्द है, कहीं कोई आदि व्याकरण है, जिसके ठीक हो जाने पर सभी छन्द आपसे आप ठीक हो जाते हैं, सभी व्याकरण आपसे आप शुद्ध हो जाते हैं।

(२८)

हर्ष की मृत्यु के बाद मैंने चक्रवर्तियों की राजधानी में जाना छोड़ दिया था। जंगल में शमी के पेड़ पर धनुष छिपाकर किसान बन गया था। जब जरा सा मौका मिलता शमी के पेड़ पर छिपाया धनुष उतारता था और दोआब के मैदानों में मुक्ति के लिए लड़ती सेना में सम्मिलित हो जाता था। बड़े-बड़े बलिदान करके भी मैं हार जाता था और मुझे धनुष छिपाकर बार-बार हलकी मूठ पकड़नी पड़ती थी। मुहम्मद तुगलक के जमाने में दोआब में मैं वर्षों लड़ता रहा, और सतनामियों के रूप में मुगल-काल के अन्तिम दिनों में हमारे मूक बलिदान ने उस बड़े सिंहासन के पाये हिला दिए। पर उस बार भी धनुष छिपाना पड़ा। मैं एक बार पुनः उठा, अट्ठारह सौ सत्तावन में। उस बार मेरा धनुष धरती पर रह गया और मुझे ही अंग्रेजों ने पेड़ पर लटका दिया। उनके हिसाब से लड़ाई खत्म हो गई।

उसके बाद जब मेरी आंखें खुलीं तब मैंने देखा कि तुमने वैताल को डाल पर से उतार लिया है।

(२९)

आज हालीवुड में यही होता है। यहाँ पहले कहानी का चुनाव होता है। बाद में कलाकार चुने जाते हैं। मौजूदा कलाकारों में से कोई नहीं जँचता तो किसी नए चेहरे को अवसर दिया जाता है। यानि चरित्र के अनुसार कलाकार खोजा जाता है। भारत में भी ऐसा होता है, किन्तु गिनी-चुनी कम्पनियों में। दूसरी कम्पनियों में सितारों का बोलबाला रहता है। सितारे जो कुछ कहते हैं, वही होता है। निर्माता सितारों के इशारों का गुलाम होता है। ऐसी दशा में वहाँ कथाकार की क्या जगह होगी, इसका अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। जहाँ सितारों का बोलबाला हो, वहाँ उनके हिसाब से कहानी का ढांचा तैयार किया जाता है। यानी कहानी नहीं लिखी जाती, बल्कि दार्जीगिरी की जाती है।

(३०)

कहा जाता है कि मुंशी प्रेमचन्द फिल्मी दुनियाँ से निराश लौट गए। कुछ लोगों ने कहा कि वह फिल्मी दुनियां के वातावरण में अपने आपको समाँ

न सके । कुछ ने कहा कि वह इस योग्य न थे कि फिल्मों में अपना स्थान बना सकते । लेकिन किसी ने यह नहीं कहा कि फिल्मी दुनियाँ ने उनकी योग्यता को न समझा, यहाँ के निर्माता-निर्देशकों ने उनका मूल्य न जाना । क्योंकि फिल्मी दुनियाँ का हर निर्माता और निर्देशक खुद को एक बड़ा कथाकार भी मानता है । फिल्मी कहानियों के बारे में कहा जाता है कि 'चट मंगनी पट ब्याह' की तरह लिखी जाती हैं, यानि लड़का लड़की की साईकिल से टकरा गया; पहले झगड़ा हुआ, बाद में प्यार हो गया । लो, हो गई कहानी तैयार । ऐसी दशा में मुंशीजी यहाँ रहकर क्या पाते । क्या यह ऐसी बेतुकी बातें अपनी कलम की नोंक से उतार सकते थे ? कदापि नहीं । वह साहित्यकार थे ।

(३१)

अभी हम इस उज्ज्वल नक्षत्र के अचानक तिरोहित हो जाने के धक्के से संभल भी नहीं पाए थे कि सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी, निबन्धकार, आलोचक, काव्यशास्त्र-विशेषज्ञ एवँ दार्शनिक बाबू गुलाबराय का स्वर्गवास हो गया । इस दुर्घटना के घटने से चौबीस घण्टे की अवधि भी व्यतीत नहीं हुई होगी कि यह दुःसम्वाद मिला कि अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान, बहु-भाषा विशेषज्ञ, बौद्ध-दर्शन के अपूर्व ज्ञाता, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का स्वर्गवास हो गया । हिन्दी के इन दो महान् साहित्यकारों के प्रति अभी हम अपनी भावी भीनी श्रद्धांजलियां प्रस्तुत कर रहे थे कि यह समाचार मिला कि परिजनों एवं परिचितों से दूर भागलपुर के रेलवे प्लेटफार्म पर हिन्दी के समर्थ गीतकार श्री गोपालसिंह नेपाली का अत्यन्त दुःखद प्राणान्त हो गया । इस सारे घटनाचक्र को हिन्दी का दुर्भाग्य ही कहा जायगा । श्री नेपाली जनकवि थे । जनता की भावनाओं को जन-भाषा के माध्यम से, जिस मधुरता से इस कवि ने प्रस्तुत किया, वह उनकी अपनी ही देन थी । उनके गीतों के साथ जनता की आकांक्षाएं और कल्पनाएं गुंथी हुई थीं । मेरे आँगन की हरी घास, बेर सरीखे नए माध्यमों के द्वारा उन्होंने हिन्दी में एक नए युग का पदार्पण किया था । उनकी कविता में प्रवाह और ताजगी थी । वह जीवट के आदमी थे । साहित्य के माध्यम से उन्होंने जन मानस को प्रस्तुत किया था । वह अपनी कविता के सुन्दर नियोजक थे, शिल्प सौन्दर्य एवं सहज भाषा से उनकी कविता अनूठी

थी। ऐसे जन कवि का बड़े परिवार को अचानक निराश्रित छोड़कर चले जाना परम दुःख की बात थी।

(३२)

बात १९५५ की है। मैं अपने मित्र के साथ संसद भवन गया। संसद भवन जहाँ संसद-सदस्यों, मंत्रियों तथा अन्य बड़े बड़े अधिकारियों का संगम होता है। मित्र के साथ होने पर भी मुझ पर अधिक प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया। मैं भौंचक्का सा हो इधर उधर घूमते संसद-सदस्यों तथा अन्य मंत्रियों को कुतूहलपूर्ण विस्फारित नेत्रों से उनकी ओर देखे जा रहा था। ऐसे नेता जो जन-जन के लिए इतने प्यारे थे, बिना किसी संकट के खुले-आम घूम रहे थे। एकबारगी मैं क्या देखता हूं कि हमारे प्रधान मंत्री श्री नेहरू अपने कुछ चपरासी पीछे छोड़े चले आ रहे हैं। उन्हें देखते ही मैं एक ओर हट गया तथा दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया। उधर मेरे नमस्कार का उत्तर दिया ही था कि सामने अपनी धुन में मस्त आते दो आदमी उनसे टकरा गये। उन्होंने ज्योंही मुंह उठाकर ऊपर देखा तो घबराकर भाग गये। क्योंकि मैं पास ही खड़ा था। मुझे उन्होंने कहा कि जाओ पकड़कर लाओ। मैंने भागकर उन दोनों आदमियों को पकड़ा और नेहरूजी के सम्मुख खड़ा कर दिया। नेहरूजी ने उनके कन्धे सहलाते हुए कहा, "क्यों भाई, कहीं अधिक चोट तो नहीं आई। बड़े कायर निकले। क्या मैं तुम लोगों को मारने जा रहा था। बहादुर बनो। सभी लोग एक जैसे हैं, कोई बड़ा या छोटा नहीं है। जाओ, धैर्य से काम लो।"

(३३)

लेकिन जीवन में कभी-कभी कुछ ऐसी घटनाएँ भी हो जाती हैं, जो हमारे विश्वासों में बाधा डालने लगती हैं। यही हाल मेरा हुआ। इन्हीं गर्मियों की बात है। हम सब बाहर सोते थे, लेकिन मैं बड़ी डरपोक लड़की हूं, सड़ी गर्मी पड़ने पर भी मैं सदैव मच्छरदानी लगाकर सोती हूँ ताकि आँख खुलने पर मैं बाहर की चीजों को न देख सकूं। जिस बड़े आंगन में हम सब लोग सोते थे, उसी में एक किनारे पर बेला के बहुत सारे फूल लगे थे। रात में उनकी भीनी भीनी खुशबू बड़ी सुहावनी लगती है। मेरी चाची फूलों की रसिया हैं। इस उम्र में भी फूलों से शृंगार करने से बाज नहीं आतीं। एक

रात सोते समय उन्होंने बहुत सारे फूल अपने तकिए के पास डाल लिये, ताकि उनके बिस्तर से भी फूलों की सुगन्ध आये। चाची को देखकर मुझे भी फूलों का शौक चर्राया और मैंने भी बहुत सारे फूल अपने सिरहाने रख लिए। चाची ने जब यह देखा तो, लगी उपदेश देने—"अब यह जमाना आगया है कि क्वांरी लड़कियां फूल पहनें और अपने बिस्तर को महकायें।"

(३४)

बच्चों! आज हम तुम्हें चाचा नेहरू के बचपन की बड़ी मजेदार बातें बतलायेंगे। जानते हो उन्हें सबसे प्यारा त्यौहार कौनसा लगता था? उन्हें सबसे अच्छा वही एक त्यौहार लगता था जिससे उनका खुद का सम्बन्ध था। वह त्यौहार था बच्चों, उनका जन्म-दिन।

जवाहर चाचा को अपने बचपन की एक घटना अक्सर ही याद आती थी। उस वक्त ये चाचा तो क्या पर भतीजे कइयों के होंगे। हमेशा एक बहुत होशियार सईस रहता था। अरबी नस्ल का शानदार घोड़ा था, एक रोज उसने इन्हें गिरा दिया। उस वक्त शायद इनके पास वह सईस नहीं था। घोड़ा खाली घर लौट आया। घर में हलचल मच गई, सभी बहुत घबड़ा गये। उनकी तलाश में लोग बेतहाशा दौड़े, कोई इधर, कोई उधर। इनके पिता स्वर्गीय श्री मोतीलालजी नेहरू ने जब इन्हें रास्ते में पड़ा पाया तब उन्हें ऐसा उठाया मानो इन्होंने कोई बड़ी बहादुरी का काम किया हो।

(३५)

मजाक की एक बात और याद आती है। राजेन्द्र बाबू का कार्यकाल जब शेष हुआ, हम लोगों ने दिल्ली से उनकी बिदाई के लिए एक बहुत बड़ी सभा का आयोजन किया था जिसमें डाक्टर राधाकृष्णन्, डा० जाकिरहुसैन और पण्डित जवाहरलाल सभी लोग आये थे। सभा आरम्भ होने के पूर्व वर्षा काफी हो गई और प्रायः अधिकांश लोग भीग गये। हम लोगों ने भीगे कपड़ों में ही सभा की कार्यवाही पूरी की और लगभग वैसे ही सभा से वापस भी हुए। जब हम लोग मञ्च से उतर रहे थे, मैंने गंगा बाबू से कहा "गंगा! मैं तो बिल्कुल भीग गया। घर जाकर कपड़े तुरंत बदलने होंगे।" गंगा बाबू अपना

कुर्ता तानते हुए बोले "मेरा कुर्ता तो सूख गया। मुझे कपड़े बदलने की जरूरत नहीं होगी।" पण्डितजी हमारी पीठ पर ही आ रहे थे। उन्होंने हमारी बातचीत सुनली थी। जब उन पर हमारी नजर पड़ी, हम उन्हें रास्ता देने को रुक गये, मगर पण्डितजी उस दिन मौज में थे। जाते-जाते बोले "मोटी और पतली चमड़ी का फर्क समझते हो दिनकर ? जिसकी चमड़ी मोटी होती है उसका कपड़ा जल्दी सूख जाता है।" गंगा बाबू ठहाका मारकर हँसने लगे, "वाह-वाह ! वाह-वाह ! क्या महीन तीर मारा है ? जवाब नहीं है पण्डितजी आपका।"

(३६)

एक बार ऐसा हुआ कि पं० केशवदेव मालवीय के बेटे के विवाह के अवसर पर पण्डितजी पार्टी में खूब नफीश शेरवानी पहनकर आये। उस समय पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी, पंडित मथुराप्रसाद मिश्र और मैं एक जगह पर खड़े थे। पंडितजी ने आते ही टोका "तुम हिन्दी वाले जब देखो तभी एक साथ गुंथे रहते हो। कहो, हिन्दी चलती है या नहीं ?" यह प्रश्न मुझे किंचित् विषैला मालूम हुआ, मगर मेरे मुंह से कोई बात नहीं निकली। मेरे बदले मथुरा बाबू बोल उठे—"पंडितजी, गांधीजी चलाते थे, तब हिन्दी मजे में चलती थी। अगर आप चलाइएगा तो हिन्दी जरूर चलेगी।" मथुरा बाबू ने नहले पर दहला दाग दिया, इसलिए हवा जरा भारी होगई अतएव वातावरण को पिघलाने के लिए मैंने मजाक किया, "वाह पंडितजी यह शेरवानी तो ऐसी फबती है कि क्या कहना ? आज तो आपने सत्यनारायण बाबू को बिलकुल मात दे दी।" पंडितजी पास आकर बोले "एक खुफिया बात बताऊं ? यह शेरवानी कोलम्बो के लिए बनी थी ?" पंडितजी तुरन्त ही कोलम्बो से वापस आये थे।

थोड़ी देर के बाद सत्यनारायण बाबू भीड़ में मेरी खोज करते हुए मेरे पास पहुंचे और कहने लगे, "पंडितजी को आपने क्या कह दिया कि वे ढिंढोरा पीटते चल रहे हैं कि आज मैंने सत्यनारायण को मात दे दी ? मेरे यह पूछने पर कि किस बात में मात खाई है मैंने, पंडितजी ने कहा है, यह राज की बात है, जाकर दिनकर से खुद पूछ लो।" सत्यनारायण बाबू उस

दिन धोती में आये थे। सो जवाब में मैंने अपना सिर पीट लिया और कहा "हां महाराज आज ही आपको धोती में आना था? पंडितजी की शेरवानी देखी है आज आपने। अगर सदा की भाँति आज भी आप शेरवानी-पजामे में होते तो आप दोनों का फोटो सारे संसार में छप जाता और इस शीर्षक के साथ कि जवाहरलालजी ने पोशाक में सत्यनारायणसिंह को मात दे दी।"

(३७)

पितरों की आज्ञानुसार परशुराम ने अश्वमेघ यज्ञ किया और यज्ञ के पुरोहित कश्यप को सारी पृथ्वी अर्पण करके वह दक्षिण-समुद्र तट की ओर चल दिए। यहां सह्याद्रि-पर्वत पर से उन्होंने समुद्र में अपना परशु फेंका और भडौच से लेकर कन्याकुमारी तक का सारा समुद्र-गत प्रदेश समुद्र से भेंट में ले लिया। यही कारण है कि यह प्रदेश परशुराम का ही सर्वाधिक उपासक है। अपने गुरु शिव के अगणित मन्दिर परशुराम ने यहाँ स्थापित किए। इस प्रदेश में भद्रकाली भवानी के मन्दिरों की प्रतिष्ठा का श्रेय भी परशुराम को ही है। कोंकण के पेढ़े गांव के पास 'क्षेत्र परशुराम' नामक तीर्थ है, जहां परशुराम की मूर्ति है। प्रतिवर्ष यहाँ अक्षय तृतीया को परशुराम जयन्ती का पर्व मनाया जाता है, जिसमें केरल के तीर्थ-यात्री आते हैं। शिवाजी के गुरु समर्थरामदास यहां प्रतिवर्ष आते थे और प्रचलित धर्म-ग्लानि एवं अधर्म-अत्याचार के उन्मूलन के लिए परशुराम से प्रार्थना करते थे। उनकी वह प्रार्थना आज भी इस पर्व पर गाई जाती है।

(३८)

फर्वरी और मार्च ये दो महीने ऐसे हैं, जब फूलों पर बहार आ जाती है और बसन्त तो प्राकृतिक सुषमा तथा उमंग और उल्लास का मौसम ही है। बाग-बगीचे तो फूलों के हास से मुस्करा ही उठते हैं। घरों में भी गृहिणियों को पुष्प-सज्जा करने के लिए फूलों के चुनाव एवं संयोजन की काफी सुविधाएं मिल जाती है। अपरिमित भण्डार से वे मनपसंद फूल को चुन सकती है, तथा उनके घर में एक उत्फुल्ल वातावरण की सृष्टि भी कर सकती हैं। तो आइए, आप भी क्यों न, प्रकृति की इस सुन्दरतम देन फूलों के भण्डार से अपने घर

को सजाने के लिए फूल चुनें । अपनी कल्पना का पुट देकर नयी-नयी विधियों से पुष्प-सज्जा करके आप सब का मन मोह सकेंगी । यहां फूलों के सजाने की कुछ विधियाँ प्रस्तुत हैं ।

पिछले कुछ वर्षों में फूलों के सजाने के तरीके कलात्मक रूप में विकसित हुए हैं । अब फूलों को किस प्रकार और किन विभिन्न रूपों में सजाया जा सकता है, इस पर अनेक पुस्तकें प्राप्त हैं, और जगह-जगह लोगों ने कक्षाएं भी प्रारंभ की हैं जहां इस विषय में सिखाया जाता है । गृहविज्ञान की कक्षाओं में पुष्प-सज्जा 'कला' के रूप में एक विषय ही माना जाता है ।

(३६)

चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है । इसके पीछे दो शक्तियों का संतुलन है । हम देख चुके हैं कि पृथ्वी निरन्तर चन्द्रमा को अपनी ओर खींच रही है । यह एक शक्ति हुई । चन्द्रमा पृथ्वी की तरफ खिच नहीं आता । इसके लिए उसे पलायन की शक्ति प्रदर्शित करनी होती है । यह शक्ति उसे स्वयं की गति से प्राप्त होती है । जब भी किसी पदार्थ को गति दी जाती है, वह सीधी रेखा में होती है । जब गुलेल से पत्थर छूटता है तब वह सीधी रेखा में जाता है, चूंकि पृथ्वी उसे खींचना चाहती है, वह धीरे-धीरे अपनी गति की सीधी रेखा पृथ्वी की तरफ झुकाता है और गिर पड़ता है । चन्द्रमा के साथ भी बात इसी तरह की है, लेकिन एक अन्तर है । वह पृथ्वी की दिशा में खिचता अवश्य है परन्तु उसका अपना वेग इस प्रकार का है कि पृथ्वी और उसके बीच की दूरी हमेशा प्रायः एक सी रहे—केवल इतना ही वह झुकता है । यदि पृथ्वी का आकर्षण न होता तो सीधी रेखा में भाग जाने का इच्छुक चन्द्रमा कब का आकाश में खो चुका होता । पृथ्वी उसकी सीधी रेखा को हर क्षण अपनी दिशा में ($\frac{1}{19}$ इन्च प्रति सैकण्ड) खींच कर रखती है ।

पृथ्वी का गोला चन्द्रमा से बहुत बड़ा है । इसीलिए आमतौर पर कह दिया जाता है कि चन्द्रमा पृथ्वी की ओर आकर्षित होता है । सच्चाई यह है कि दोनों एक दूसरे को आकर्षित करते हैं । समुद्रों में ज्वारभाटे का कारण चन्द्रमा का गुरुत्वाकर्षण ही है । गणित-शास्त्रियों का कहना है कि जब चन्द्रमा का गुरुत्वाकर्षण बीच समुद्र में केन्द्रित होता है, तब समुद्र की सतह तीन फीट

ऊपर उठ जाती है। न केवल पानी बल्कि जमीन भी चन्द्रमा की तरफ खिचती है।

(४०)

जिन पदार्थों का पिण्ड कम होता है उनमें गुरुत्वाकर्षण भी कम होता है। अधिक पिण्डवाले पदार्थों के साथ बात ठीक उल्टी है। किसी ढलान पर अगर चट्टानों के टुकड़े ढुलकाए जाएं तो हर टुकड़ा एक दूसरे के गुरुत्वाकर्षण से खिचता है, लेकिन वे आपस में टकरा नहीं जाते। उनके गुरुत्वाकर्षण की नाप तो हो सकती है लेकिन वह प्रबल नहीं है। पृथ्वी एक अत्यंत विराट पदार्थ है। यह विराट पदार्थ अपनी सतह के पदार्थों पर गुरुत्वाकर्षण रखता है। न केवल इतना ही बल्कि चन्द्रमा और सूर्य को भी प्रभावित करता है। चन्द्रमा पृथ्वी से छोटा है, अतः इसकी पूरी संभावना है कि वह पृथ्वी पर खिच कर टकरा जाए। ठीक विपरीत पृथ्वी सूर्य से बहुत छोटी है। सूर्य के गुरुत्वाकर्षण से प्रभावित होकर वह उसमें समा सकती है। गुरुत्वाकर्षण के खिचाव से बचने के लिए ही पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूम रही है और चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर।

हम देख चुके हैं कि ज्यों-ज्यों हम पृथ्वी से दूर जाते हैं, उसका गुरुत्वाकर्षण कम होने लगता है। यदि पृथ्वी की सतह पर किसी पदार्थ का वजन १६ पौण्ड है तो उसी का वजन सतह से ४,००० मील दूर मात्र ४ पौण्ड बचेगा और १२,००० मील की दूरी पर तो केवल एक ही पौण्ड। यदि उस पदार्थ को चन्द्रमा की जितनी दूरी (२,४०,००० मील) पर ले जाया जाय तो वजन पुराने रुपये का केवल $\frac{4}{45}$ बचेगा। यदि गणना की जाय तो १२० पौण्ड का आदमी चन्द्रमा के जितनी दूरी पर जाकर पुराने रुपये के केवल १ पूर्णाङ्क एक बटे तीन वजन का होगा। यदि दूरी और बढ़ाते जाएं तो वजन इतना कम हो जायगा कि शायद आप उसे वजन कहना ही न चाहें। लेकिन पृथ्वी की बात यह है कि शून्य वजन के पदार्थ का पिण्ड (मांस) उतने का उतना रहेगा।

(४१)

सरलता के लिए पहले हम पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की बात करें। यह सभी को मालूम है कि पृथ्वी अपनी सतह के हर पदार्थ को केन्द्र की तरफ

खींचती है। चलते-चलते यदि हमें ठोकर लगती है तो हम आकाश में नहीं उड़ जाते, बल्कि वापस पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। हवा में फेंकी गई गेंद ऊपर ही ऊपर उड़ जाने की बजाय नीचे गिर जाती है। हम कहेंगे कि पदार्थ अपने वजन के कारण नीचे गिरा जब कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस बात का कारण गुरुत्वाकर्षण ही है। अलग-अलग जगहों में वजन अलग-अलग क्यों हो सकता है, इसे आप बड़ी आसानी से समझ लेंगे। यदि यह बताया जाए कि पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण हर जगह समान नहीं होता। जो पदार्थ पृथ्वी की सतह पर होगा उस पर उस पदार्थ से कम गुरुत्वाकर्षण रहेगा जो पृथ्वी की सतह से ऊपर, दूसरे शब्दों में, केन्द्र से दूर है। इसी तरह यदि कोई चीज खाई में है, अर्थात् सतह की तुलना में केन्द्र के ज्यादा पास है तो उस पर गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव अधिक होगा यानी वजन अधिक।

यों हम देखते हैं कि वजन और पिण्ड में समानता नहीं है। दोनों शब्दों का एक ही मतलब होने का भ्रम हमें इसलिए हो जाता है कि दोनों को एक ही मापदण्ड से नापा जाता है। 'एक पौण्ड पिन्ड' या 'एक पौण्ड वजन' दोनों ही तरीकों से बात कही जा सकती है। लेकिन यह बात हुई साधारण बोलचाल की। वैज्ञानिक दृष्टि से दोनों को नापने के साधन अलग-अलग हैं। पिण्ड तराजू से नापा जाता है जबकि वजन काँटे से। जब तरकारी तौली जाती है तो एक तरफ किलो का पिण्ड रखा जाता है और दूसरी तरफ उसी के पिण्ड की तरकारी। तराजू में दोनों पलड़ों पर पिण्ड तौला जाता है आकार नहीं। जब पलड़े बराबर हो जाते हैं तो इसका अर्थ है, दोनों तरफ पिण्ड एक समान है। तराजू को आप पर्वत की चोटी पर लेजाइये या गहरी खाई में, लेकिन चूंकि पदार्थ के पिण्ड में अन्तर नहीं आयेगा, दोनों जगह पलड़े बराबर ही रहेंगे और दर्शाएँगे कि पिण्ड में समानता है।

जो चीजें पृथ्वी पर हैं, उनका पिण्ड हम आसानी से नाप लेते हैं। लेकिन यदि स्वयं पृथ्वी के पिण्ड का नाप प्राप्त करना हो तो ?

(४२)

इतिहासकारों के सम्मुख जहाँआरा के जीवन का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण समय है उन सात वर्षों का, जो उसने बन्दी पिता के साथ स्वेच्छा से

आगरे के किले में बिताये । जहाँआरा के हाथों से शासन की बागडोर छीन लेने तथा वृद्ध सम्राट् को आगरे के किले में बन्दी बना लेने के पश्चात् औरंगजेब ने बहुत चाहा कि उसकी प्रिय बहन राजसी ठाट-बाट में रहे किन्तु इन निमन्त्रणों का तिरस्कार करके जहाँआरा ने अपने अभागे व तिरस्कृत पिता के बन्दी जीवन के दुखों को बंटाना ही पसंद किया । पिता की सेवा-शुश्रूषा करते तथा उन्हें धीरज बंधाते जहाँआरा ने किले में एक 'तपस्विनी का जीवन' तब तक व्यतीत किया, जब तक शाहजहाँ की मृत्यु न होगई । किन्तु शाहजहाँ की मृत्यु के पहले कई असफल प्रयत्नों के पश्चात् जहाँआरा ने वृद्ध सम्राट् के हृदय में उदारता की भावना जगाकर उससे औरंगजेब के नाम एक विधिवत् क्षमादान पत्र लिखवा कर ही छोड़ा ।

(४३)

बलबन के शासनकाल में ही मंगोल पंजाब का एक बड़ा हिस्सा अपने कब्जे में कर सके । बलबन ने मंगोल से सन्धि करने की कोशिश भी की, लेकिन उससे कोई खास कामयाबी न मिल सकी । सन् १२५४ में लाहौर मंगोल के हाथ में चला गया । पंजाब का एक छोटासा हिस्सा ही दिल्ली सल्त-नत के अधीन रह गया था । बलबन ने मंगोलों को रोके रखने के लिए उत्तरी पश्चिमी सीमा पर किलेबन्दी की और वहां पर अपने चचेरे भाई शेरखां के सेनापतित्व में एक बड़ी सेना रखी । शेरखां बहुत बहादुर सेनापति था और उससे खूंख्वार मंगोल भी डरते थे । सन् १२७० में, शेरखां की मृत्यु हो जाने पर बलबन ने सीमा-रक्षा का काम अपने बेटों को सौंपा । इन्होंने मंगोलों को पंजाब से खदेड़ने का बहुत बड़ा काम किया । लेकिन १२८६ में मंगोलों ने फिर से हमला कर दिया । इस बार मंगोलों का सामना करता हुआ बलबन का एक लड़का मुहम्मद मारा गया । इससे भी बलबन निराश नहीं हुआ और उसने एक बड़ी सेना भेजकर लाहौर को फिर से अपने कब्जे में कर लिया ।

(४४)

नयी कहानी में रचनात्मक मूल्यों का जितना और जैसा विकास हुआ, उसके समानान्तर आस्वाद का धरातल और मूल्यांकन विवेक जागृत नहीं हो पाया, इसीलिए नयी कहानी के अस्तित्व पर शंका करने वाले पुरानी पीढ़ी में

ही नहीं, नयी पीढ़ी में भी मिलते हैं। ('जिस हद तक वह कहानी है, उस हद तक वह नयी नहीं है, उस सीमा तक वह कहानी नहीं है'–निर्मल वर्मा)। उस पर की गई चर्चाओं की पक्ष धरता के कारण व्यक्तिगत या वर्गीय सिद्धांतों के कुहासों में एक पूरी की पूरी उपलब्धि के बारे में भ्रम फैला हुआ है। दर-असल पिछले दशक में (ही) नयी कहानी ने इतनी विविध और विभिन्न और (साथ ही) विरोधी दिशाओं का एकसाथ संस्पर्श किया है कि एक-ब-एक उसकी सम्पूर्ण और अन्वित धारणा नहीं बन पाती। नयी या पुरानी, अच्छी या बुरी, घूम फिर कर चर्चाएं यहीं केन्द्रित रही आयी और न चाहते हुए भी खानें खिचने लगे, वर्ग बनते गये। इससे छुट्टी मिली, तो आलोचना की गयी भाषा ईजाद करने के फेर में चर्चा संकेत-प्रतीक बिम्ब-शिला में सीमित होकर रह गयी और नयी कहानी सम्बन्धी मूल्यांकन की कौन कहे, आस्वाद का भी कोई धरातल निश्चित नहीं हो पाया।

(४५)

बिहारवालों के लिए चलते-फिरते विश्वकोष बाबा दामोदरदास अब नहीं रहे। अभिशप्त १९६३ उन्हें भी ले गया। आजमगढ़ का गढ़, बन्धु-बान्धओं का स्नेह, प्रथम पत्नि की सेवा-भक्ति इस व्यक्ति को कभी बाँध न सकी, इन सबसे रस्सी तुड़ा कर केदारनाथ पाण्डे, जो भागे सो ७० साल तक की उम्र तक भागते रहे। जिप्सियों के समान घूमते रहें। एशिया, यूरोप छान डाला, हिमालय को रम्य घाटियों और बत्सर घने जंगल छान डाले। पर इस घुमक्कड़ को और घुमक्कड़ शास्त्र के लेखक को संतोष नहीं हुआ। यह विश्व-पर्यटक पृथ्वो परिक्रम के लिए सदा उद्यत पाया गया। बिमारी में भी इसे चैन नहीं पड़ा। मधुमेह से ग्रस्त होते हुए भी वर्षों का बसाया मसूरी का घर छोड़कर, चीन और कोलम्बो को कूच कर दिया। कमला का प्यार, बच्चों का लाड़-दुलार, उनकी स्नेह ममता, कुछ भी तो उनको रोक न सकी।

तिब्बत से किताबों, चित्रों और मूर्तियों का गट्ठर खच्चरों पर ढो कर लाने पर भी जिसको संतोष नहीं हुआ, और जिस खजाने को पाकर डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल सदृश पुरातत्वविद् कृत्य-कृत्य हो गया।

(४६)

अत्यन्त गहरा और मार्मिक प्रश्न यह है कि गांधीजी के बाद का स्वतंत्र भारत वृद्धि की ओर बढ़ रहा है या पूर्णत्व की ओर ?

भारत के बँटवारे को स्वीकार करते समय अत्यन्त दुःख के स्वर में प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा था—"हमने सिर कटाकर सिर दर्द की दवा पाई।" प्रश्न यह है कि अब हम आत्मा बेचकर शरीर तो नहीं खरीद रहे हैं ? स्वास्थ्य बेचकर शृंगार तो नहीं ले रहे हैं।

रवीन्द्रनाथ ने २५ दिसम्बर १९२० को न्यूयार्क से एक पत्र में लिखा था—"आज बड़ा दिन है, किन्तु मानव के हृदय में बड़े दिन की भावना कहा है ? स्त्री-पुरुष विशेष व्यंजनों से पेट भर रहे हैं। और जोर-जोर से अट्टहास कर रहे हैं। उनकी मस्ती के हृदय में शाश्वत का जरा-सा स्पर्श भी नहीं है, आनंद की चमकती हुई शान्ति नहीं, भक्ति की गहराई नहीं। हमारे भारत के उत्सवों से कितनी भिन्नता है। इन पश्चिम के मनुष्यों ने धनोपार्जन किया है, किन्तु जीवन के अपने कार्य का हनन किया है। पश्चिम में जीवन उस नदी की तरह है जिसने बालू और पत्थरों का ढेर कर लिया है और जल की अनवरत धारा को रोक दिया है।

(४७)

फिर सुना कि आप धीरे धीरे स्वस्थ हो रहे हैं। कहीं एक दिन फिल्म में आपको बगीचे में धीरे धीरे पांव रखते हुए चलते देखा और मन एकदम उदास हो गया। काल देवता किसी पर कृपा नहीं करते। पर हमारे मन में आपका जो स्वरूप था वह कालजयी लगता था। कभी 'सुमन' ने आपको सुनाते हुए एक कविता पढ़ी थी 'तुम बूढ़े होगये, बदली होगी हमको यौवन की परिभाषा' और आप उस विशाल वटवृक्ष की तरह झरझराकर हंस पड़े थे जिसके आसपास कभी जंगल रहा हो पर अब जिधर निगाह डालो कुछ नहीं दीखता है। नयी बस्ती की नयी सड़कों के दोनों ओर लगे छोटे-छोटे गुलमुहर, अमलतास जैसे जल्दी रंग में आने वाले पौधे तो चारों ओर है, पर ऐसा एक भी वृक्ष नहीं, जो कन्धे से सटकर आंधी पानी में साथ दे। एक एक कर सब चले गये। पिता मोतीलाल, माँ स्वरूप रानी, पत्नी कमला, धर्म-पिता महा-

त्माजी, सरदार और कितने ही । उस दिन बगीचे की रविशों में आपको देखा, तो फिर जी में आया कि पत्र लिखूं, पर आपके कष्ट का ध्यान आने पर रुका रहा । फिर आप वाल्मीकि नगर गये, आपने पत्र-प्रतिनिधियों को बताया कि आप इतनी जल्दी जाने वाले नहीं हैं, मैं पूरे देश की ही भांति आश्वस्त हो गया । मेरे मित्र कबसे मुझे दिल्ली बुला रहे थे । उस दिल्ली में जिसमें आप थे । पिछले सत्रह वर्षों से जहाँ आप शासन कर रहे थे । महान् सम्राटों की नगरी, इतिहास की उथल-पुथल में बार-बार नये शृंगार करके उठने वाली दिल्ली पर इस बार आपका शासन था, आपके रथ के चक्रों की लीक देश-विदेश की धरती पर बार बार उभर रही थी । आपके वायुयान आकाश की गहराई मथ रहे थे । उस दिल्ली में जाकर रहने का स्वप्न मैं पिछले कितने ही वर्षों से देख रहा था ।

(४८)

लेकिन नहीं मोना, तुम्हारा कहना ठीक था–'दिल्ली इज द मोस्ट ब्यूटीफुल प्लेस इन इण्डिया' । कल मैं पार्लियामेण्ट की ओर से गुजरा था । मैंने पूरा भारत नहीं देखा (शायद तुमने भी नहीं देखा होगा) कि कह सकूँ कि 'दिल्ली इज···लेकिन, तुलना किये बगैर भी कह सकता हूं कि दिल्ली बहुत सुन्दर जगह है । बबूलों के वृक्षों और वीरान जगहों के बीच से भागती हुई चमकीली सड़कें और जगह-जगह बनी हुई खुली कोठियां, जल-प्रवाह के बीच भंवर से चक्कर काटते और घेरते रंगीन बाजार और बाजारों का राजा कनाट प्लेस–एक नहीं कई-कई भंवरों और आवर्तों में लिपटा और लपेटता हुआ अनन्त मोहक चेहरों को, मद्धिम-मद्धिम स्वर में संगीत की लय में बजता हुआ पूरा वातावरण, संभ्रान्त नर्तकियों-सी सजी दुकानें, वृत्तों में चक्कर काटती सुन्दर मुखौटा लगाये भटकी हुई रूहें·····सुन्दर चमकीली सड़कें, भागती हुई कारें. मोटर साइकिलें और बसें, फुटपाथ के पास जीवन से जूझते हुए बबूल के पेड़······और सबके ऊपर रंगीन बदली सी धूपछाँह छोड़ती हुई राजनीति की उडती अप्सरा······और तभी फिर पुरानी दिल्ली याद पड़ गई–बरसात में भीगती हुई पुरानी दिल्ली । मोना, लगता है तुमने पूरी दिल्ली नहीं देखी, तुम केवल 'विजीटर' बनकर दिल्ली आये हो और विजीटर नई दिल्ली को ही

दिल्ली समझता है। मैं दिल्ली को जीकर देख रहा हूं, इसलिए पहले बरसात में भीगती हुई दिल्ली ही मुझ में उभरी।

(४६)

आभा, इस कहानी से क्या हमारी आंखें नहीं खुल जानी चाहिए? इसके चौंधिया देने वाले प्रकाश में क्या हमें अपने मन की समस्त ग्रंथियां खोलकर, जीवन को सरस, सरल और हल्का नहीं बना लेना चाहिए?

आशा है, तुम मुझे उत्तर दोगी, इतना फिर कह देना चाहती हूं कि समय रहते यदि हम लोगों ने अपने को नहीं बदला तो दुर्दान्त नई पीढ़ी, अपने इच्छानुसार बलपूर्वक हमें बदल देगी। आज तक हमारी छातियों का दूध पीने वाले हमारे ये बच्चे कल विकराल नाग बनकर हमें नहीं डसेंगे—इसकी अब कोई गारन्टी नहीं रही आभा।

तुम्हारे परिवार के साथ जुडी अपनी पुरानी यादों और उन्हीं पुराने शुभाशीषों सहित।

तुम्हारी
वन्दना (सुरेश की माँ)

बूढ़ी वन्दना ने पत्र लिखकर उसे मोड़ा और फिर लिफाफे में बन्द करके उस पर पता लिख दिया—

सौभाग्यवती आभा मुखर्जी
द्वारा,
महाशय विनय मोहन मुखर्जी
कीर्तिनगर (इटवाना)